197

हिन्दी

शीराज़ा

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़
जम्मू

द्विमासिक

हिन्दी

अप्रैल–मई 2009

प्रमुख संपादक

ज़फ़र इक़बाल मन्हास

संपादक

नीरू शर्मा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू–180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 April-May 2009
(Hindi)

वर्ष : 45 अंक : 1 पूर्णांक : 190

★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू–180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू–180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब–144 004 दूरभाष : (0181)–2640025

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

शीराज़ा हिन्दी के स्वर्ण जयंती विशेषांक का विमोचन करते हुए प्रो. वेद घई, प्रो. राजकुमार, अकैडमी सचिव ज़फ़र इक़बाल मन्हास एवं अतिरिक्त सचिव श्रीमती सविता बख़्शी।

जनाब ज़फ़र इक़बाल मन्हास सचिव जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी, शीराज़ा के स्वर्ण जयंती विशेषांक के विमोचन के अवसर पर वक्तव्य देते हुए।

संपादकीय

आज नैतिक-मूल्यों का विघटन हो रहा है। चारित्रिक असंयम, भ्रष्टाचार, दायित्वहीनता और बेइमानी समाज में चारों ओर फैली हुई है। जिससे साहित्य में आशंका, भय, अनिश्चितता, मूल्यों का विघटन, पतनशील प्रवृत्तियों का उदय, जीवन के प्रति अनास्था, मृत्यु और वेदना की जीवन पर प्रतिष्ठा आदि ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियां प्रगट होने लगी हैं।

दूसरी ओर लेखक को बदलते हुए जीवन-मूल्यों ने बहुत प्रभावित किया है। इसीलिए लेखन, प्रकाशन एवं चिंतन आदि सभी स्तरों पर व्यवसायिकता की प्रवृत्ति, मौलिकता एवं उन्मुक्त रचनात्मकता को क्षति पहुंचाती है। आज के साहित्य में धीरे-धीरे यह क्षरण भी दिखाई दे रहा है।

हमारे आदर्श, जीवन-पद्धति, समाज, परिवार एवं नीति सभी में युगानुकूल नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की मांग है। इसके लिए लेखक की दृष्टि का साफ एवं सोच का निरपेक्ष होना अनिवार्य है। नहीं तो उसके लेखन में धुंधलका होगा, जो समाज के हित के लिए नहीं है। लेखक के लिए आवश्यक है कि रचना करने से पूर्व वह जीवन की गहराई माप ले, जिससे उस की कला-दृष्टि उदित होती है। इसीलिए भाषा की कसौटी की अपेक्षा अनुभव की प्रमाणिकता के लिए प्रतीकों या बिंबों का नहीं अपितु चरित्र-निर्माण क्षमता, कथानक संघटन आदि का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है।

जीवन-दर्शन की निर्जीव सूत्रात्मकता को कल्पना द्वारा एक सीमा तक ही नया जामा पहनाया जा सकता है जिससे रचना में जीवन का सागर ही नहीं लहराता अपितु कल्पना व्यक्ति मन की उमंगों के पंख पर सवार हो कुछ पल के लिए ही चाहे नयी बनी रहे लेकिन अंततः उसे बसियाना ही पड़ता है। रचनाकार के लिए ज़रूरी है कि वह जब भी नया प्रयोग करे, उसकी दृष्टि साफ हो और जो वह कहना चाहता है, अपनी रचना के माध्यम से सहजता से कह दे।

वास्तव में साहित्यकार एक समष्टि पुरुष होता है। वह मात्र अपनी जिंदगी नहीं जीता, अपने समाज और अपने समय की जिंदगी को भी प्रतिबिंबित करता है। वह अगुआ है, राह पर चलता भी है और अपने युग को उस राह पर चलने की प्रेरणा भी देता है।

नीरू शर्मा

इस अंक में

- **अंतरंग**

- **आलेख**

- **कविता /गज़ल/दोहे**

- **हास्य-व्यंग्य**

- **कहानी /लघु कथा**

- **साक्षात्कार**

- **नवांकुर**

- **समीक्षा**

दिल्ली में आयोजित 'कश्मीर-महोत्सव' (21 फरवरी से 2 मार्च तक) में डोगरी लोक संगीत 'भाखां' गाते हुए डुग्गर के प्रसिद्ध गायक श्री प्रद्युम्न सिंह जंद्राहिया एवं सुश्री कृष्णा कुमारी।

कश्मीर महोत्सव दिल्ली में डोगरी लोक नृत्य प्रस्तुत करते हुए कलाकार।

'ध्रुव ते ऊंच प्रेम ध्रुव ऊआ'–जायसी

❑ डा० चंचल डोगरा

अभी उसे मां के साथ गाड़ी पर चढ़ा कर हम रेलवे-स्टेशन से बाहर ही निकले थे कि फोन बज उठा, 'हैलो, नानी, मेरा टेडीबियर वहीं रह गया।'

कोई बात नहीं, मैं भिजवा दूंगी।' 'अच्छा।' और उसने फोन काट दिया कितनी जल्दी समझ जाते हैं बच्चे। पूरा महीना कैसे कट गया पता ही नहीं चला। माह का हर दिन, हर घंटा, हर पल भरपूर जिया हमने उसके साथ। घर लौटने पर वीरानी पसरी मिली चारों ओर। घर के प्रत्येक कोने की आंखों में जिज्ञासा लिए एक ही प्रश्न तैर रहा था-'अब कब आयेगा ?' सन्नाटे से घबरा कर बाहर आई तो ज़ीनिया, गेंदा, पैंजी, गुलाब सभी ने उदासी से भर कर यही पूछा- 'अब कब आयेगा ?' मैं तो अभी बीते माह को ही जी रही हूं और ये आने वाली किलकारियों की अवधि जानना चाह रहे हैं। उसका आना भी तो तपती दुपहर में घनी छांव पाने सा, चिलचिलाती गर्मी में ठंडी हवा के झोंके से सुकून पाने सा था; पर उसके लिए ..... ?

हमारे साथ पीहू का पहला दिन जिज्ञासा से भरा अति व्यस्त रहा तथा बिना किसी चिंता के कट गया। रात सोते समय एक हाथ में मम्मी-पापा के साथ अपनी तस्वीर लिए उसने सुबकते हुए मम्मी को फोन किया-'मम्मी, मुझे आपकी याद आ रही है।' 'मेरी फोटो देख लो।' 'मम्मी मुझे आपकी दुल्हन वाली शक्ल की याद नहीं आ रही।' 'मेरी दूसरी फोटो देख लो।' 'मम्मी मुझे आपके हिलाने की याद आ रही है।' 'नानी को बोलो, वह तुम्हें हिलायेंगी।' अंत में आंखों में आंसू भरकर उसने बड़ी बेसब्री से कहा, 'मुझे आपकी खुशबू की याद आ रही है।' कितना सुरक्षित कर देती है मां की खुशबू। बरसों पहले लिखी कविता की पंक्तियां अनायास ही याद आ गई, 'मीलों दूर से भी / करती है / सुवासित मुझे / तुम्हारी गंध / तुम्हारी/ स्मृतियों की आहटें / चौंकातीं हैं / मुझे / बन छुअन।' स्मृतियों के रेशमी तंतु जाने आत्मा की किस डोर से बंधे है, मेरे लिए यह आज भी रहस्य है। आखिर मां कब तक दिलासा देती। मैं ही उसे धीरे-धीरे बातों में बहला कर प्रह्लाद की कहानी सुनाने की चेष्टा करने लगी परंतु प्रह्लाद का नाम लेते ही कहानी पीहू ने सुनानी शुरू कर दी ; कहीं कोई गल्ती नहीं .... हूबहू वैसी ही जैसी उसकी पुस्तक में है। धीरे-धीरे आंखें बोझिल हुईं और वह सो गया। प्रातः काल उठा तो उसे बहुत काम था। माली आया। माली के साथ उसे भी काम करना था। उसे पौधों को पानी देना था, गुड़ाई करनी थी, फूल गिनने थे, रंगों के अनुसार

उनका विभाजन करना था। यह उसके लिए नए अनुभव का क्षेत्र था जो विस्तार पा रहा था। पौधों के बारे में अपनी जानकारी जतलाने में वह जरा भी चूक नहीं करता। कहता 'पहले मिट्टी में 'सीड' लगाते हैं, फिर उसका 'स्टेम' निकलता है, फिर उसमें 'लीव्हस' आते हैं, फिर 'फलावर' आते हैं और फिर फ्रूट आता है।' यह सारे कार्य निपटें तब कहीं जाकर पार्ले जी बिस्कुट के साथ उसने दूध पिया। फिर टी. वी. पर कार्टून, नहाना, कार्टून, नाश्ता फिर कार्टून के पश्चात् लंच तक की दिनचर्या पूरी हुई। उन दिनों हम कार्टून वाले चैनलों के अलावा दूसरा कोई चैनल लगा ही नहीं पाते। कार्टून के बारे में हमारे ज्ञान में काफी वृद्धि हुई। हमारे लिए मुख्यत: दो ही कार्य प्रधान थे-एक, बार-बार टी. वी की आवाज़ कम करने के लिए कहना और दूसरा, हर काम के लिए पीहू के पीछे दौड़ना। दिन-भर में कम-से-कम पूरे घर के बीस-पच्चीस चक्कर अवश्य लगवाता। हमें दौड़ाने में उसे मज़ा आता और हम हांफने लगते। धीरे-धीरे पता नहीं कब इस दौड़ के अभ्यस्त हो गए कि मुझे कमर और घुटने का दर्द याद ही नहीं रहा। लगा हड्डियों के सारे जोड़ रवां हो गए। दौड़ने का उसने नया तरीका ईजाद किया। पहियों वाले साईड टेबल पर वह पेट के बल लेटकर पैरों से दीवार पर ज़ोर का धक्का देता और घर-भर में दौड़ता फिरता, लगता के पहिए टेबल में नहीं पीहू को ही लगे हुए हैं। प्रयत्न होता अपने पैरों पर कम-से-कम चला जाए।

मई की दोपहर जितनी गर्म होती है उतनी ही लम्बी। बिना सोए तो कटती ही नहीं और पीहू है कि उसकी आंखों में नींद नहीं। ऊपर छत पर पेंटर दरवाजों पर पॉलिश कर रहे हैं, आंगन में पलम्बर काम कर रहा है। तपती दोपहर में उसे पेंटर या पलम्बर के पास जाना होता है। उसकी अपनी धारणा है कि उसे वे सारे काम आने चाहिए जो उसके परिवेश में हो रहे हों, उन्हें करना न करना अलग बात है। यह भी संयोगमात्र है अन्यथा बच्चे कहां जानते हैं देश में अपने भविष्य की अनिश्चितता। हम थक चुके हैं, सोना चाहते हैं और पीहू पॉलिश के हुनर से भिज्ञ होना। जानती हूं कि बच्चों को डराना नहीं चाहिए पर स्वार्थी थकावट के सामने, अवश थी। उससे कहती हूं कि यहां प्रशासन के कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। इसमें समझाने से अधिक डर जगाने का भाव निहित होता। पहले बच्चों को बाबा, फकीर, साधु का नाम लेकर डराया जाता था। समय के साथ डर का आलम्बन बदला है। डर का भाव जस-का-तस है। 'कौन से नियम ?' वह पूछता है। 'दिन में सोना ज़रूरी है,' मैं कहती। 'नहीं सोओ तो ?' नियम तोड़ने का परिणाम जानना चाहता है? 'तो प्रशासन के सिपाही आकर पकड़ लेते हैं और ...।' पीहू हथकड़ी तक सुनकर आगे की कार्यवाही स्वयं बतलाने लगता है। 'मुझे मालूम है हथकड़ी दोनों हाथों में डालते हैं और खींचकर ले जाते हैं, जेल में बंद कर देते हैं और मारते हैं; पर नानी हमारी मुंबई में तो ऐसा कोई नियम नहीं है।' 'हां बेटा यहां है...।' फिर नियम समझ कर वह सो जाता है। 'भय बिनु होय न प्रीत गोपाला'। अब तो ज़रूरत पड़ने पर गाहे-बगाहे सिपाही बुलाए जाने लगे। क्षमा करना बेटा। ऐसे कड़े नियम बनाने वाले प्रशासन को पहचानने की मंशा से वह समाचार पत्र में उनका फोटो देखना चाहता है ताकि कहीं भी मिलें तो किसी तरह का

प्रतिशोध ले सके या कुछ बच्चों के हित में समझा सके। उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं होने दी गई। वाह रे स्वार्थ।

कहीं भी बाहर जाने के लिए वह तवी नदी के ब्रिज का चयन करता। ब्रिज प्रारम्भ होते ही वह ज़ोर से 'हे........' चिल्लाना प्रारंभ करता तथा समाप्त होते ही 'हे ..... खत्म हो गया' कहता। हमें भी ऐसे ही चिल्लाना होता। यह उसके पापा ने सिखाया था। ढक्की चढ़ते समय महल की तरफ इशारा करते हुए कहता 'यह जम्मू के राजा का महल है, इसमें राजा की 'चेयर' भी है, राजा की सारी चीज़ें रखी हैं।' वहां से गुज़रते हुए वह हर बार यही दोहराता। उसकी स्मरण एवं निरीक्षण शक्ति ग़ज़ब की है। बात तो मूड की है। मूड न हो तो सुविधानुसार भूल जाता। 'मैं भूल गया।' या 'मैं याद ही नहीं रख पाता हूं', जैसे वाक्य होते। पीहू के मनोरंजन हेतु घुमाने के बहाने हमने वे सारे महत्त्वपूर्ण स्थान भी देखे जो पहले नहीं देखे थे। पीहू के नानू ने न तो पीरखोह का मंदिर और न ही तवी किनारे 'हर की पौढ़ी', जिसे हूबहू हरिद्वार की हर की पौढ़ी जैसा बनाया गया है, देखा था। पीहू बड़ा प्रसन्न था। सब मंदिरों के दर्शन करने के पश्चात् वह सीढ़ियां उतर कर तवी नदी में तैरना चाहता था, उसे तैरना अत्यंत पसंद है। शायद वह अपनी तैराकी की कला हमें दिखलाना चाहता था। हमने उसे पानी में जाने नहीं दिया। इस पर उसका मूड ऑफ होना स्वाभाविक था। उसे हम बागे-बाहू ले गए। बावे वाली माता के परिसर में लगे झूलों को देखकर वह फूला नहीं समाया। घोड़े वाले छोटे झूले से लेकर 'जांयट' झूले पर अकेले बैठने की हिम्मत उसने अपनी मां से ही पाई होगी। वह भी बचपन में बड़े झूलों पर अकेले ही बैठा करती थी। नानू ने लौटने के लिए कहते हुए कहा, 'चलो पिकनिक हो गई।' नहीं यह पिकनिक थोड़े ही है', वह खीझ कर बोला 'हम चद्दर-बद्दर बिछाकर बैठे ही नहीं, उस पर बैठ कर खाना भी नहीं खाया।' पिकनिक से उसका तात्पर्य चद्दर बिछा कर खाना खाने से होता है, यह बात हमें पत्नीटॉप जाते समय समझ आई। पत्नीटॉप जाने के लिए वह रात से ही बड़ा उत्सुक था। उसने बेस बाल, हाकी-सेट, क्रिकेट-सेट रात को ही अपने बैग में डाल लिए थे। चद्दर-बद्दर ले लेना उसने दो-तीन बार याद भी दिलाया। प्रात: काल आश्वस्त होने के लिए उसने एक बार फिर पूछा, 'चद्दर-बद्दर' ले ली है न? सूरज भैया आप नहीं चल रहे ?' 'चल रहा हूं।' फिर ऑफिस के कपड़े क्यों पहने है?' सूरज ने शर्ट उतार टी-यार्ट पहनी। यानी पिकनिक पूरी मानसिकता के साथ होनी चाहिए। रास्ते-भर पीहू एक सेकेंड के लिए भी चुप नहीं हुआ। 'जब हम फाईव माऊंटेन क्रास कर लेंगे तो पत्नीटॉप आयेगा। मेरे पापा ने बतलाया है। श्रीनगर जाते समय, भी पत्नीटॉप आया था, अब यहां मेरे दोस्त आएंगे, पापा कहते हैं बंदर मेरे दोस्त हैं, अब हम दूसरा माऊंटेन क्रास कर रहे हैं, नानू ये... नानू वो...।' सारी बातें एकतरफा थीं। दूसरे की भूमिका हुंकारा भरने तक की होती।

पीहू की शब्द संपदा का दायरा धीरे-धीरे विस्तृत हो रहा था। पीहू नाक में अंगुली डाल मुंह में डालने लगा, मेरी तात्कालिक प्रतिक्रिया थप्पड़ के रूप में प्रकट हुई। तभी उसने मां को फोन मिलाया। मैंने फोन काट दिया, उसने दुवारा मिलाया मैंने फिर काट दिया। दूसरी

तरफ से मां का फोन आ गया। ज़ाहिर है कि उसने शिकायत लगाई, 'नानी ने मारा और फोन भी काट देती है।' 'तुम मुझे मिस कॉल किया करो तो मैं फोन कर लिया करूंगी।' 'वो कैसे?' 'जैसे अभी किया था। फोन करके एक रिंग होने पर काट दिया करो।' अब मिस कॉल भी उसकी शब्दावली में समाविष्ट हो गया। जिस दिन पीहू ने कागज़ की किश्तियां बनानी सीखीं उसी दिन नानू को लेकर तवी नदी पर गया। हमारे घर से तवी का रास्ता करीब पांच मिनट भर का है। नानू के कहने पर उसने सारी किश्तियां नदी में डाल दीं कि उसके मम्मी-पापा को जुहू बीच पर मिल जाएंगी। कुछ दिन मां के फोन के इन्तज़ार में बीते, कहता रहा पता नही मेरी किश्तियां मम्मी को मिली हैं कि नहीं, पता नहीं मम्मी-पापा जुहू बीच गए भी कि नहीं? बड़े असमंजस की स्थिति में था। सब्र की सीमा का बांध टूटा तो मां को फोन कर स्वयं ही पूछ लिया-'मम्मी मेरी किश्तियां मिली?' नहीं।' 'मैंने तवी रिवर से भेजी थीं। नानू ने कहा था कि आपको जुहू बीच पर मिल जाएंगी।' नहीं मिलने का मतलब उसकी शब्दावली में झूठ का जुड़ जाना था। ऐसा ही एक झूठ बनने से बच गया था। पीहू रोते-रोते अपना टूटा हुआ दांत घर भर में ढूंढ रहा था। उसे लग रहा था कि उस बच्चे द्वारा 'चिन' पर मारने से उसका दांत टूट गया है। 'चिन' पर लगे मुक्के को याद कर उसे दर्द भी कुछ ज़्यादा ही होने लगता। आखिरकार उसे दांत मिल ही गया। पहले तो फोन पर मां को शिकायत लगाई गई। गुस्सा इस बात का था कि नानू ने उस बच्चे को कुछ कहा भी नहीं। मां के कहने पर अपने टूटे दांत को रुई में लपेट कर पीहू ने सोते समय तकिए के नीचे रख दिया। सुबह उठकर दांत देखा तो थोड़ा परेशान दिखा, 'टुथ परी' (दन्तपरी) दांत तो ले ही नहीं गई।' 'उससे क्या होगा?' मैंने पूछा। वह इस दांत को ले जाकर पैसे छोड़ जाएगी, मम्मी ने कहा है।' रात फिर वही तकिए के नीचे दांत रखने की प्रकिया दोहराई गई क्योंकि 'मम्मी ने कहा है कभी दो-तीन दिन भी लग सकते हैं।' जब दो-तीन दिनों के पश्चात् भी दांत उसी प्रकार रुई में लिपटा मिला तो बड़ा मायूस हुआ। हम बाहर बैठ चाय पी रहे थे कि उसने आकर कहा-'मम्मी ने कहा है कभी-कभी टुथ परी नहीं भी आती।' और वह संतुष्ट हो गया। मां पर बच्चे के ऐसे अखंड, अपार विश्वास को शत-शत प्रणाम।

दिनों को पंख लग गए थे। रोज रात सोते समय मां के साथ होने वाली बातें घटने लगी थीं। कभी जब मां का फोटो साथ रखना भूल जाता तो लेटे-लेटे यह कह कर ही संतुष्ट हो जाता, 'अच्छा टार्च से यहीं से देख लेता हूं।' आहिस्ता-आहिस्ता यह आदत भी छूट गई पर साथ-ही-साथ उसके लौटने के दिन भी आ गए और मां आकर उसे ले गई। पीहू के दुबारा आने तक उसकी सारी स्मृतियां जिएंगे हम-

> ऐसे तो हैं अनेक
> जिनके द्वारा
> मैं जिया गया,
> ऐसा है बहुत
> जिसे मैं दिया गया।

यह इतना
मैंने दिया।
अल्प यह लय क्षण
मैंने जिया।
आह, यह विस्मय!
उसे तुम्हें दे सकता हूं मैं-
उसे दिया।
इस पूजा क्षण में
सहज, स्वत:, प्रेरित
मैंने संकल्प किया

-अज्ञेय (संध्या संकल्प)

ooo

संपर्क: 26-I तवी बिहार, सिदड़ा, जम्मू-तवी

है तो बस आभास

❑ डा० निर्मल विनोद

कैसे दिल लगता कहीं, कैसे मिटते रोग।
हम परदेसी जन्म के, हम हैं उखड़े लोग॥

हम पथ से भटके हुए, भूले अपनी चाल।
घर जाने की साध है, लेकिन सौ जंजाल॥

रेतीला सागर बना, अब के भी आभास।
लगता है इस जन्म भी, बुझ न सकेगी प्यास॥

कितने जन्मों से चली, आती अपनी प्यास।
इसका नहीं हिसाब कुछ, है तो बस आभास॥

भटकन माथे पर लिखा, उतरे हम कैलास।
तुम क्या जानो भोगते, हम कितने बनवास॥

ooo

आस्था-श्रद्धा और राजनीति का दौर

❑ देशबंधु डोगरा 'नूतन'

मनुष्य में आस्था-श्रद्धा जन्मजात नहीं होती, परन्तु जिस समाज में वह रहता है उस समाज के लोग उसमें भर देते हैं। मानव समाज में सबसे आवश्यक होता है उत्पादन, जिससे मनुष्य जीवित रहता है। उत्पादक शक्तियां उत्पादन के लिये संघर्षरत रहती हैं किन्तु उनके उत्पादन का विभाजन कैसे हो, इस पर समाज में अन्तर्विरोध रहता है और बड़ी बात है उत्पादन के साधनों पर अधिकार करके उत्पादन पर नियन्त्रण करना, जिसके लिये समाज में होड़ मची रहती है। समाज का ऊपरि ढांचा समाज में उत्पादन सम्बन्धों को स्थापित करता है और उन्हें बनाये रखने में लगा रहता है। किन्तु उत्पादन सम्बन्ध पुराने पड़ जाते हैं तो उत्पादक शक्तिओं के मार्ग में रुकावट आती है, उनकी प्रगति में ठहराव आता है तो वे पुराने उत्पादन सम्बन्धों को मार्ग से हटा देती हैं। किन्तु यह प्रकिया इतनी सरल नहीं होती और ऊपरि ढांचा अथवा शासकवर्ग पुराने उत्पादन सम्बन्धों को बनाये रखने के लिये अपनी शक्ति का प्रयोग करता है तो उत्पादक शक्तिओं को उसे भी हटाना पड़ जाता है, जिसे सामान्य भाषा में क्रान्ति कहा जाता है। इस प्रकिया में नया ऊपरि ढांचा और नये उत्पादन सम्बन्ध स्थापित होते हैं।

विश्व इतिहास का अध्ययन किया जाये तो हमें प्राचीन इतिहास मिस्र देश का मिलता है। वहां हर राजा मरने के पश्चात् भगवान का अवतार बना दिया जाता है और यह कार्य राज-पुरोहित करते हैं। अपने प्रचार कार्य के लिये वे शासक वर्गों की प्रशंसा में साहित्य की रचना करते हैं। शासक वर्गों के मंदिरों और समाधियों के पत्थरों पर उसे खुदवा देते हैं, ताकि वह साहित्य चिरस्थायी रहे। इसे ही विश्वास बना दिया जाता है, जिसे सम्मान देना पड़ता है। भय के कारण साधारण लोग इसे मान लेते हैं, जिसे आस्था और श्रद्धा की संज्ञा दी जाती है। यदि हम आस्था और श्रद्धा के गूढ़ भाव को न लें और एक ही भाव का पर्याय मान लें, (यद्यपि दोनों के भाव में अन्तर है तभी तो हमारे पास दो शब्द हैं। तो विश्वास शब्द का भाव पृथक हो जाता है। ये तीनों शब्द सत्य से पृथक होते हैं और जब विज्ञान शाश्वत सत्य को स्थापित कर देता है तो पुरानी आस्था, श्रद्धा, और विश्वास टूट जाता है। किन्तु सत्य भी कभी शाश्वत नहीं रहता और विज्ञान के नये अनुसंधान किसी सत्य को असत्य प्रमाणित कर देते हैं तो पुरातन सत्य जो विश्वास बन चुका होता है, वह टूट जाता है और नया स्थापित सत्य शाश्वत कहलाने लगता है। इसी के आधार पर नई आस्था और श्रद्धा जन्म ले लेती है। इसी आधार पर नये अनुसंधान चलते हैं। किन्तु एक समय आता है जब नये अनुसंधान करने में मानव बुद्धि अटक

जाती है तो इसके पुनः आधार पर अनुसंधान करना पड़ जाता है, और उस आधार में थोड़ा सा अन्तर भी जब प्रकट होता है तो नया आधार बन जाता है तथा पुरातन आधार पुरातन सत्य हो जाता है और शाश्वत नहीं रहता।

हमारे पास एक बड़ा उदाहरण टोलमी के भूगोल का है। इसका आधार था कि हमारी पृथ्वी स्थिर है, जबकि सूर्य इसकी परिक्रमा करता है। यही शाश्वत सत्य समझा जाता था और विश्वास बन गया। इसी आधार पर आस्था और श्रद्धा प्रकट हुई। किन्तु विज्ञान को इसमें शंका लगी और नये अनुसंधान होने लगे। कूपरनिक्स ने अपने अनुसंधान से इसे पलट दिया, किन्तु धार्मिक आस्था और विश्वास का इन्हें शिकार होना पड़ा। किन्तु गलेलियो के अनुसंधान ने कूपरनिक्स के सिद्धान्त का समर्थन किया और टोलमी का भूगोल इतिहास की पुस्तक बन कर रह गई, जबकि 1600 वर्ष तक छात्र इसे पढ़ते रहे। एक बार डुग्गर के सिलसिले में हमें इस पुस्तक की आवश्यकता पड़ी तो हम अलिगढ़ विश्वविद्यालय के भूगोल के विभाग में इसका पता करने गये। तो हमें इतिहास विभाग के डा० इरफान हबीब जी से यह पुस्तक मिली।

कश्मीरी विद्वानों में यह धारणा रही है कि कश्मीर का नामकरण कश्यप ऋषि से हुआ है और इसी आधार पर नीलमत पुराण चलता है। नाग-पिशाच द्वन्द्व का इतिहास चलता है। सैंकड़ों विद्वानों ने इसी आधार पर पुस्तकें लिखीं हैं किन्तु जब पुरातत्त्व विभाग 'बुर्ज़ाहोम' के तथ्य सामने लाता है तो इतिहास में परिवर्तन हो जाता है, किन्तु कश्यप ऋषि के कश्मीर का सिद्धान्त तो स्थिर ही रहता है। हमारा कहना है कि कष (खस) जाति के लोगों द्वारा यह नामकरण हुआ लगता है, जिनके नाम से काशगर, कशगिरि, किश्तवाड़, खसखुरा, खशाली आदि शब्द बनते हैं। हमारी बात को अगर मान लिया जाये (विशेषकर, कश्मीर और किश्तवाड़ के बारे में) तो हमारे इतिहास में एक नया चरण जुड़ जायेगा।

मिस्र के साथ जब हम मेसोपटेमिया का इतिहास पढ़ते हैं तो वहां की आस्था में देवियां भी देवताओं के साथ हैं। भले ही वे आकाश हो या पृथ्वी। उनका रूप पति-पत्नी का होता है जो कि भाई-बहन होते हैं। भाई-बहन का विवाह ही सर्वश्रेष्ठ है, जिससे सुख-सम्पत्ति नष्ट नहीं होती, बल्कि परिवार में ही रहती है। यही आस्था है, श्रद्धा है और विश्वास बन जाता है।

मिस्र और मेसोपटेमिया के इतिहास के साथ जब हम आर्यों के तीन गणों-कस्सी, हित्ती और मित्तनी के इतिहास को देखें जो कि 4500 वर्ष पूर्व तक ही पहुंच पाता है तो वहां भी राजा ही मरणोपरान्त देवत्व प्राप्त कर लेता है। उसकी पत्नी भी देवी कहलाती है। बुजुर्गों के प्रति तो श्रद्धा होती है। उनके देवत्व प्राप्त कर लेने के उपरांत श्रद्धा आस्था में परिवर्तित हो जाती है और कुछ समय के वाद एक विशेष समुदाय का विश्वास बन जाता है।

यहां हमें कुछ देवियां मिलती हैं, जिनके पति देवता भी साथ हैं। कुछ देवियां स्वतन्त्र हैं। इनके पति नहीं मिलते। जैसे 'इनन्ना' प्रेम और युद्ध की देवी है और देवताओं की भान्ति पूजनीया है। आर्यों के अराध्य देव 'तेशब' मेघ प्रभंजन के देवता हैं और उनकी पत्नी 'हेबत'

सिंह वाहिनी है और दुर्गा की भान्ति शक्तिमाती समर भयंकरी है। एक अन्य सिंह वाहिनी पंख वाली देवी 'शौशका' जिसका कोई पति नहीं है। फिर हम ईरान में भी ऐसे ही देवी-देवताओं को देखते हैं। चीन में भी लिंग पूजा, नाग पूजा, धरती माता के मंदिर पाते हैं।

यहां हम एक शब्द 'निष्ठा' भी जोड़ देते हैं जो श्रद्धा, आस्था और विश्वास से दार्शनिक तौर पर भिन्न है। 'निष्ठा' शब्द में कट्टरता का भाव विद्यमान है। ऊपर हमने जिन देवी देवताओं के विषय में कहा है, उनके प्रति इन देशों में श्रद्धा, आस्था, विश्वास और निष्ठा दो तीन हज़ार वर्ष तक लोगों में रहती है, किन्तु बौद्ध धर्म, ईसाइयत और इस्लाम के आने से पुरातन आस्थायें चली गईं और नई आस्थायें आ गई।

आरम्भ में मनुष्य भोजन संचय करता था और उत्पादन की व्यवस्था नहीं थी। मनुष्य समूहों में रहता था, जिसे बाद में गण अथवा जन की संज्ञा दी गई। मनुष्य का जीवन-यापन के लिये प्रकृति से टकराव भी था। तूफान आते, आंधी आती, अतिवृष्टि होती गर्मी में सूर्य चमकता तो गर्मी पड़ती, सर्दी में धूप ठण्डी होती, पर्वत हिमपात से लद जाते। आग भड़कती तो जंगल में शरीर झुलस जाते। इसी प्रकार कई प्रकार की आफतें आतीं। मनुष्य सोचता कि ये सभी शक्तियां हैं और मनुष्य के बस के बाहिर हैं, इन्हें प्रसन्न करने के लिये इनकी आराधना आवश्यक है। आरम्भ में यहीं शक्तियां आराध्य थीं, जिनके कोप से बचने के लिए मनुष्य प्रयत्नशील रहा।

आरम्भ में समूह अथवा गण में माता की प्रधानता रही है। युगल विवाह के नियम नहीं थे, अत: सन्तान की पहचान माता से ही होती थी, क्योंकि पिता शब्द ही नहीं था। माता की समाज में प्रधानता से शक्ति अथवा भगवान का अमूर्त रूप नारी वाचक था। ऊपर हमने जिन सभ्यताओं के इतिहास को उद्धृत किया है वह पांच हज़ार वर्ष से तीन हज़ार वर्ष के बीच का इतिहास है, जिसमें पितृसंत्तात्मक समाज है फिर भी हमें 'निनमह' (धरती माता), 'एंकी' (जल देवी), 'इनन्ना' प्रेम और युद्ध की देवी, 'अरिन्ना' (सूर्या), भारतीय भाषाओं में 'सविता' नारी वाचक हैं और सूर्य का पर्याय है। 'निन्ना' प्रेम की प्रतीक है। 'आत्मा' शब्द नारीवाचक है और परमात्मा भी तो नारी वाचक है किन्तु आज हम इसका प्रयोग पुरुष-वाचक के तौर पर कर रहे हैं।

मातृसत्ता के बारे में मानव विज्ञान ने हमें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करवाई है और 'नौर्गन' (लेबिस हैनरी 1818-1881) के साथ ही इस क्षेत्र में एक क्रान्ति आ गई। भारत में हमारे पास वैदिक साहित्य अत्याधिक सामग्री प्रस्तुत कर देता है जो कि यूरोप के पास नहीं थी। मानव विज्ञान के उद्‌भव से हमें वैदिक साहित्य का विश्लेषण और संश्लेषण करने में अपूर्व सहायता मिलती है।

ऋग्वेद में 18 देवियों के नाम मिलते हैं, जिनके नाम से गुणों का नामकरण हुआ है। इन गणों का उद्धरण जैन साहित्य और महाभारत में भी मिलता है। अदिति का अदैत्य, दित्ती का दैत्य। अदिति कुंवारी है। इसका जन्म अपने-आप हुआ। यह इन्द्र सहित समस्त देवगण की माता कही

जाती है। इसके प्रति देवताओं में अपार श्रद्धा, आस्था और निष्ठा पाई जाती है। अदिति को जगदम्बा की संज्ञा दी गई। आज इसके प्रति आस्था न भी हो तो भी किसी यज्ञ अथवा अनुष्ठान में इसकी पूजा होती है। अदिति केन्द्र में होती है, जबकि चार देवियां-पथ्या-स्वस्ति, अग्नि, सोमा और सविता पृथक्-पृथक् कोने में विराजमान हैं। आज इनके नाम पुरुष वाचक हो गये हैं। हविषा में अदिति को अच्छे पदार्थ दिये जाते हैं, जैसे घृत, मधु आदि, जबकि शेष चारों को जौ, उड़द, मसूर, चना आदि दिया जाता है। अदिति के प्रति आस्था हज़ारों वर्षों से चलती आ रही है। पुरुष प्रधान समाज में नारी के हाथ से सत्ता जब चली गई तो देवी के स्थान पर देवता आ गये। अमूर्त प्रकृति की शक्तियां पुरुष वाचक हो गईं, सविता, अग्नि, पवन, (वायु) जल देवता हो गये। पुरुषसत्ता ने श्रद्धा, आस्था, निष्ठा और विश्वास को ही पलट दिया, किन्तु पिछड़े क्षेत्रों में परम्परायें चलती रहीं, जिनकी चर्चा आगे होगी।

पितृसत्तात्मक समाज में नई धारणाओं का जन्म हुआ। किसी देवी की स्थापना हुई तो उसका जन्म पुरुष से हुआ। जैसे यूनान की समरभयंकरी 'ऐथिना' का जन्म उसके पिता 'ज्योस' के मस्तिष्क से अस्त्र-शस्त्र के साथ हुआ।

आरम्भ में मातृसत्तात्मक अथवा नारी प्रधान समाज में मनुष्य की उत्पत्ति के बारे में धारणा थी कि इसका जन्म 'योनि' से होता है तो 'योनि' पूजा प्रचलित थी। पितृसत्तात्मक समाज की स्थापना हुई तो 'लिंग' पूजा शुरू हो गई।

वाम मार्गी सम्प्रदाय में योनि-लिंग की पूजा प्रतीत रूप में नहीं होती, बल्कि यथार्थ रूप में होती है, जिनकी चर्चा महर्षि दयानंद ने सत्यार्थ-प्रकाश में की है, जहां स्त्रियां और पुरुष पृथक्-पृथक् उत्सव मनाकर इनकी पूजा करते हैं, यद्यपि अकबर के समय से ही सती प्रथा के साथ यह पूजा भी प्रतिबंधित रही है। इस प्रकार की पूजा को यदि अन्ध-विश्वास न कह कर आस्था, श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास कहा जाये तो क्या यह उपहास नहीं?

वास्तव में आस्था, श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास जब स्थापित कर दिये जाते हैं तो परम्परा का रूप ग्रहण कर लेते हैं। आस्था अगर टूट भी जाये तो भी परम्परा बनी ही रहती है। मसलन, पुराने मिस्र में विश्वास था कि मरने के पश्चात् परलोक में मनुष्य को भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। वहां के राजाओं ने अपनी समाधि लेने के लिये बड़े-बड़े पिरामिड निर्मित किये जिनमें सुख के सभी साधन रखे जाते थे। घोड़ा तो रखा जाता था, किन्तु एक पत्नी भी ज़रूरी होती थी।

भारत में यदि मरण संस्कार को देखें तो पति के साथ पत्नी का सती होना परलोक में निष्ठा का एक हिस्सा है, जिसे मुगलकाल में सख़्ती से प्रतिबन्धित कर दिया गया था। किन्तु श्राद्ध, पिण्डदान, गोदान, शय्या दान आदि के रूप में यह परम्परा आज तक चल रही है।

आर्य जब भारत में आये तो उनके देवता प्रतीक रूप में नहीं थे, किन्तु उन्होंने स्थानीय लोगों के देवता भी प्रतीक रूप में अपना लिये। नाग, द्रविड़, तथा अन्य आदिवासियों के देवी-

देवताओं को भी अपना लिया। यहां तक स्थानीय आस्थाओं और परम्पराओं को भी अपना लिया।

यूनानी आक्रमणकारी जब पंजाब में स्थापित हुए तो उन्होंने ऐथिना, एपोलो और एकिलीज़ के मंदिरों की स्थापना की थी। सिकन्दर के लौटने के पश्चात् इन्हें खण्डित कर दिया गया, किन्तु मौर्यों के पश्चात् जब यूनानी दोबारा आये तो इन देवी-देवताओं की पुनर्स्थापना की गई। बाद में इन्हें स्थानीय भाषा में नाम मिल गये। शक्ति अथवा जगदम्बा, सूर्य अथवा विक्रम, कृष्ण अथवा श्याम। विक्रम सम्वत् तो 56 ई० पू० में एज़िज़ प्रथम ने चलाया था, जो कि आज तक चल रहा है। सर्वप्रथम सिकन्दर ने पंजाब में एकिलीज़ का मंदिर बनाया था। यूनानी कवि होमर के अनुसार वे टरोजन युद्ध के नायक थे जो कि 1184 ई० पू० में समाप्त हुआ था। एकिलीज़ ने एक बहुशीर्ष नाग से युद्ध किया था, जिसने उसकी एड़ी को घायल कर दिया था और शरीर का रंग श्यामवर्ण हो गया था। उसकी मूर्तियां श्यामवर्ण की थीं। वेद व्यास ने महाभारत में कृष्ण को राजनीतिज्ञ, सांख्य, न्याय, योग शास्त्रों का समर्थक और योगीराज कहा है। उपनिषदों का ज्ञाता होने पर गीता का रचियता कहा है। (गीता वास्तव में उपनिषदों का सार लगता है। बहुत से मन्त्र गीता में साधारण संस्कृत में मूल रूप में आ जाते हैं।) किन्तु भागवत पुराण ने कृष्ण को आनंद नंद गोपी कृष्ण के रूप में चित्रित किया है, जो कि गुप्त काल के पश्चात् ही होता है। एकिलीज़ की भक्ति कालीनाग से युद्ध होना और पांव में नाग दंश से शरीर काला हो जाना, चित्रित किया है, यद्यपि उनकी माता देवकी एक नागकन्या है। अन्त में कृष्ण के उसी पांव में एक भील के वाण के प्रहार से उनकी मृत्यु हो जाती है। आज कृष्ण भगवान में आस्था गोपी-कृष्ण के रूप में अधिक है। डोगरी भाषा में जो कृष्ण जन्म की कथा मिलती है, उसमें उग्रसेन पाताल देश में नागजाति का राजा है। उसकी विभिन्न वर्णो की पांच पत्नियां हैं। एक बार उसकी अनुपस्थिति में एक राक्षस उसका रूप धारण करके आता है और पांचों को गर्भवती बना कर चला जाता है। उनसे कंस, फिड्डू नाई, कुच्छड़ धोबी, चन्नू चमार और देवकी उत्पन्न हुई। कंस अपने भाइयों के साथ मथुरा में राज्य करता है और देवकी पाताल लोक में पिता के पास रहती है। उग्रसेन का एक पुत्र इच्छाधारी नाग पाताल लोक से मानव रूप धारण करके कंस के दरबार में आता है। किन्तु फिड्डू नाई उसे पहचान लेता है, क्योंकि उसकी अंगुलियों पर तीन अंगों (भावों) की रेखाएं नहीं हैं। वह कंस को परामर्श देता है कि यदि इसे जीवित जला दिया जाये तो इससे मणि प्राप्त हो जायेगी। नाग पुत्र को इसका आभास होता है तो यमुना की ओर भाग जाता है। कंस के सैनिक यमुना का मार्ग रोक कर उसकी खोज करते हैं किन्तु एक आर्य ऋषि वासुदेव उसे अपनी कुटिया में अपने कमण्डल में शरण देते हैं। सैनिक, नाग को कुटिया में ढूंढ़ते हैं और फिर वासुदेव को कुटिया से निकल जाने को कहते हैं। वे अपने कमण्डल सहित निकल पड़ते हैं और कंस के सैनिक कुटिया को जलाकर चले जाते हैं। नागपुत्र वासुदेव से आग्रह करता है कि उसे यमुना के गहरे पानी में छोड़ दें। वासुदेव जब उसे गहरे पानी में छोड़ते हैं तो नाग उन्हें खींच कर पाताल लोक में ले जाता है। वासुदेव कहते हैं कि उन्होंने नागपुत्र को बचाया है वह ऐसा व्यवहार क्यों कर रहा है। नागपुत्र ने कहा कि वह उनका धन्यवाद करना

चाहता है। मेरे पिता उग्रसेन पाताल के राजा हैं और मैं आपको उनसे पुरस्कृत करवाऊंगा। वासुदेव राजा उग्रसेन के दरबार में पंहुचे उनका बड़ा आदर-सत्कार हुआ। नागपुत्र ने वासुदेव से कहा कि जब पिता उग्रसेन उन्हें कुछ मांगनें को कहें तो उनसे मेरी बहिन देवकी मांग लेना जो कि त्रिलोक सुंदरी है। ऐसा ही हुआ। नागपुत्र ने देवकी से कहा कि विदाई के समय खूब रोदन करना और जब पिता कुछ मांगने को कहें तो दहेज स्वीकार न करना, बल्कि उनके दायें हाथ का अंगूठा मांग लेना। अंगूठे में इतनी शक्ति है कि तुम्हारी हर इच्छा पूरी कर देगा। ऐसा ही हुआ। वासुदेव और देवकी यमुना तट पर पहुंच गये। वासुदेव एक तरफ स्नान करके पूजा में लीन हो गये और दूसरी तरफ देवकी ने स्नान करके अपने पिता के अंगूठे की पूजा करके वरदान मांगा कि उनके लिये तीन लोकों से अति भव्य-भवन निर्मित किया जाये जो धन-धान्य, सेवक-सेविकाओं से भरपूर हो। देवकी ने अपनी आंखें खोलीं तो भवन तैयार था। उधर वासुदेव आये तो आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने देवकी को भी बड़ी कठिनता से पहचाना। देवकी ने वासुदेव को कंस के दरवार में बहुमूल्य उपहारों के साथ भेजा और अपने घर पर आमन्त्रित किया। एक दिन कंस अपने भाइयों और अन्य लोगों सहित उनके घर पहुंचा तो भव्य-भवन और धन-वैभव देख कर हैरान हो गया। भोजन की बारी आई तो देवकी सजधज कर खाना परोसने लगी। पहली बार उसने दही का 'मद्धरा' परोसा तो फिड्डू नाई ने अपनी अंगुली से उसके पांव पर 'मद्धरा' की तरी छिटक दी। दूसरी बार आई तो देवकी ने अन्य वस्त्र-आभूषण पहने थे कि कंस पहचान नहीं पाया। पृथक-पृथक पदार्थ परोसने के लिये कई बार देवकी आई तो हर बार उसकी भेष-भूषा अलग-अलग होती। कंस ने फिड्डू नाई से पूछा कि वासुदेव की कितनी पत्नियां होंगी तो उसने कहा कि पत्नी तो एक ही है किन्तु हर बार अपना श्रृंगार बदल कर आती है। वह देखिये उस पर 'मद्धरा' का छींटा पड़ा है। पानी तो सूख गया किन्तु दही का चिह्न रह गया है। देवकी श्रृंगार तो कर लेती है किन्तु पांव नहीं धोती। कंस, देवकी का सौंदर्य देख कर लालायित हो गया। किन्तु देवकी ने कहा कि मेरे भाइयो, ''हम गरीबों का साधारण-सा भोजन ग्रहण कीजिये।'' इस पर शर्मिंदा हो गया कि देवकी तो इसकी धर्म बहन बन गई है। फिर कुछ दिनों के पश्चात् आकाशवाणी हुई कि कंस का भानजा उसे मार देगा। कंस को इसकी आशा नहीं थी, क्योंकि उसकी सोच के अनुसार उसकी कोई बहिन ही नहीं थी। फिड्डू नाई ने उसे देवकी के बारे में बताया। आगे की कथा भागवत और प्रेमसागर की भान्ति ही है जिसमें कृष्ण लीला चलती है।

इस प्रकार भगवान कृष्ण के प्रति श्रद्धा, आस्था और विश्वास भी हर क्षेत्र में अलग-अलग है। इस प्रकार कृष्ण भक्ति अथवा कृष्ण मार्ग के कई पंथों का उदय हुआ। सूरदास के सूर सागर के पश्चात् और भी कई पंथ सामने आये हैं। 'मार्ग' और 'पंथ' का सूक्ष्म तथा अलग भाव है। इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा करना इस लेख की सीमा से बाहिर है।

आरम्भ में पश्चिमी ऐतिहासकार राम को कृष्ण के बाद मानते थे, किन्तु हम राम कथा महाभारत में पाते हैं रामायण की भाषा से महाभारत की भाषा पुरानी है। ये महाकाव्य किस

काल में और किस भाषा में लिखे गये। इस पर बड़ा विवाद है। सम्भवत: संस्कृत में ये बाद में रूपान्तरित हुए हों। फिर इनमें परिवर्तन और संशोधन भी बहुत हुआ है। भारत में शिलालेख हमें शुरू में प्राकृत में मिलते हैं। वे भी मौर्य सम्राट अशोक के काल में। (सिन्धु घाटी के लेख अभी तक पढ़े नहीं गये हैं।) संस्कृत का पुराना और पहला लेख जो अधिक लम्बा है वह कच्छ के शक राजा रुद्रदमन का 150 ई० का है जो जूनागढ़ से मिला है।

राम कथा भारत के प्रत्येक प्रान्त और भाषा में मौजूद रही है, जहां से हमारे कवियों ने लोक कथा को उठाकर महाकाव्यों की रचना की है। महाकाव्य में नायक ऐतिहासिक होते हैं, शेष कवि की कल्पना शक्ति होती है। दशरथ जातक में स्थान बनारस दिया है, जबकि वाल्मीकि ने साकेत और नदी सरयू दी है। साकेत का भी नाम अयोध्या कर दिया है। साकेत में सर्वप्रथम कौशल नरेश प्रसेनजित ने 542 ई० पू० में एक महल का निर्माण किया था। साकेत, पर मौर्य काल में ही दो बार यूनानी आक्रमण हो चुके थे अत: साकेत अयोध्या (जहां युद्ध न हुआ हो) नहीं हो सकता। अन्तिम मौर्य सम्राट वृहदरथ की हत्या उसके सेनापति पुष्य मित्र शुंग ने की और सत्ता अधिकृत करके साकेत को राजधानी बना कर भारत से यूनानी आक्रमणकारियों को भगाया। ब्राह्मण धर्म की पुनर्स्थापना होने लगी। नर-नारायण के रूप में स्थापना हुई। वाल्मीकि ने यहां से अपने महाकाव्य को आधार बनाया। किन्तु उत्तर भारत में बौद्ध जनसंख्या अधिक थी। इस आस्था का उनमें कोई भी स्थान नहीं था। अलबत्ता पुष्यमित्र शुंग ने बौद्ध श्रमणों की हत्यायें भी की थीं जोकि विदेशी आक्रमणकारियों का समर्थन करते थे, विशेष कर पंजाब में। ब्राह्मण धर्म (आज का हिन्दू धर्म) का पुनरुत्थान विशेषकर गुप्त काल में ही हुआ। यहां से ही पुराणों का आरम्भ लगता है जो कि देर तक चलता रहा। इसी काल से देवमंदिरों का जीर्णोद्धार और पुनर्स्थापना का आरम्भ होता है।

ब्राह्मण धर्म में आस्थाओं को देखा जाये तो सर्वप्रथम शक्ति, फिर शैव्य, वैष्णव और वैष्णव से ही कृष्णमार्ग और राममार्ग। राममार्ग का आरम्भ दक्षिण से होता है। रामानुज ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद के विरोध में विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना करके भक्ति मार्ग को आंदोलित किया। (इसके पूर्व ही शैव्य मत से नाथ पंथ का उदय हो चुका था, जिसका हमारे डुग्गर में भी आज तक प्रभाव है।) उत्तर भारत में जब यह आंदोलन पहुंचा तो सूफी लोगों का अधिक प्रभाव आ चुका था। इस कारण यह निर्गुण, सगुण, साकार, निराकार में बंट गया। राम भक्ति में सबसे प्रथम और अधिक कार्य तुलसीदास जी का है और उन पर भी अधिक प्रभाव कम्ब-रामायण का है। रामलीला को भी उन्होंने ही प्रचारित किया है और इसे एक आंदोलन बना दिया जो कि समस्त भारत में आज तक चल रहा है। कई राजनीतिक दलों ने तो इस आस्था के कारण लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया और इसे दोबारा एक आंदोलन बना दिया है, जिसमें भक्ति पीछे रह गई है और राजनीति आगे निकल गई है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि ऐसा इतिहास ने हज़ारों वर्षों से देखा है। भारत कोई इसका अपवाद नहीं।

अन्ततोगत्वा, एक बात का वर्णन अभी शेष है कि मानव समाज में हर समूह में अपनी

निजी और पृथक आस्था, श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास होते हैं, जिनसे कोई भी छेड़छाड़ नहीं कर सकता। होमर के दूसरे महाकाव्य ओडेसी में यूलिसिज़ यात्रा पर निकलने से पूर्व अपने पुत्र से कहते हैं कि वह अन्य देवताओं की भान्ति अपने गृह अथवा कुलदेवताओं की पूजा की ओर विशेष ध्यान दे। इस प्रकार हमें गृहदेव, ग्रामदेव और गणदेव अथवा देवियों के दर्शन होते हैं। नगरों में शासक लोक अपने देवी-देवताओं को स्थापित करते आये हैं।

भारत में विशेष कर डुग्गर में हम प्रत्येक कुल के अपने देवी-देवता देखते हैं। इनमें से अधिकतर शहीद होते हैं-देवी और देवता। कई बार किसी कुल के निजी देवी-देवता के प्रति आस्था अन्य लोगों में भी चली जाती है। जैसे काली माँ तो संथाल आदिवासिओं की निजी देवी थी, किन्तु इसे आर्य लोगों ने भी अपना लिया। डुग्गर के नाग-देवता और नृसिंह भगवान को आर्यों ने जल्दी ही अपना लिया था। भले ही वे आक्रमणकारी थे किन्तु नाग-द्रविड़ आस्थाओं को अपना लिया था मसलन भगवान रुद्र महादेव पशुपतिनाथ आदि। फिरोज़शाह तुगलक कट्टर मुसलमान शासक था, किन्तु नगरकोट कांगड़ा को जीत नहीं पाया तो सन्धि कर ली, नंगे पांव माता के मंदिर में गया और सोने का छत्र चढ़ाया। औरंगज़ेब भी कट्टर था किन्तु जब वह गुजरात का गवर्नर था तो उसने वहां जगन्नाथ के मंदिर को भूमि दान में दी थी। जब वह शासक बना तो चित्रकूट के मंदिर के महन्तों को भूमि दी थी और धर्मशालाओं के निर्माण के लिये धन भी दिया था।

हमारी श्री वैष्णो देवी तो एक ठक्कर परिवार की कुल देवी थीं, आज भारत के करोड़ों लोगों की अराध्या हो गई हैं। आपको स्मरण होगा कि 1960 के दशक में संतोषी माता और शुक्रवार के व्रत का प्रचार हुआ। लोगों को अनाम ख़त आने लगे कि व्रत रखें और खत प्राप्त करने वाला हर व्यक्ति अन्य लोगों को पांच खत लिखे। 1969 में मई में मनसा देवी की पहाड़ी के नीचे जंगल में संतोषी माता के मंदिर का निर्माण भी हरिद्वार में सम्पन्न होने को था। गुलशन कुमार ने तो फिल्म भी बना डाली थी।

श्रद्धा, आस्था, निष्ठा और विश्वास को बनाने के लिये कई प्रकार के ढंग अपनाये जाते हैं, जोकि आप इस लेख में देख चुके हैं। बहुत से देवी-देवता जो आज हैं, पहले नहीं थे, जो पहले थे आज नहीं हैं। आस्थाओं में विकास के साथ परिवर्तन भी सुविधानुसार होता रहता है। नर वलि की भी कभी परम्परा थी आज प्रतिबंधित है। बहुत-सी देवियां मांस-भक्षी थीं, मसलन, सुकराला और शिवालिक की चामुण्डा, किन्तु पशु वलि हरिभक्त चैतन्य के आंदोलन से बंद हो गई। किश्तवाड़, सरथल देवी में भी पशु वलि बंद करने का प्रयास किया गया था जो सफल नहीं हो पाया।

आस्था उत्पन्न करने के उदाहरण के लिये पंजाब में बच्चों के लिये एक मज़ेदार कथा पंजाबी की तीसरी श्रेणी की पुस्तक में 1953 में पढ़ी थी, ''पीर गालड़ शाह''। एक बार कालिज के चार लड़के परीक्षा के पश्चात् एक नहर के किनारे हर रविवार को पिकनिक मनाने जाते थे। एक लड़के ने कंकर फेंका तो गलहरी (गालड़ चूहा) मर गई। उसने उसे बोतल

में बंद करके एक स्थान पर दफना दिया। अगली बार वह अपने साथ सीमेण्ट, करनी और तख्ती ले आया और ईंटें लगा कर वहां एक चबूतरा बना कर तख्ती गाड़ दी, जिस पर लिख दिया ''पीर गालड़ शाह''। अगली बार अपने साथ हरा रंग और सफेदी पोतने के लिये ले आया तो उसने देखा कि किसी ने वहां एक चिराग भी जलाया था। परीक्षा परिणाम निकला तो वे लड़के दूर-दूर चले गये। कुछ वर्षों में ''पीर गालड़ शाह'' की मान्यता दूर-दूर तक फैल गई। भक्त लोग मन्नतें मांगते और ''पीर गालड़ शाह'' पूरी कर देते। वहां एक बड़ा भवन बन गया, यात्रा अथवा दर्शनस्थल बन गया। उसी स्थान से रेलवे लाईन गुज़रनी थी जिसका सर्वे पीर की उत्पत्ति के पूर्व ही हो चुका था। ब्रिटिश सरकार के लिये समस्या खड़ी हो गई, क्योंकि बड़ी संख्या में भक्त लोग विरोध पर उतर आये क्योंकि भवन को गिराना पड़ता था। वे चार लड़के भी अधेड़ अवस्था में पहुंच गये। समाचार पत्रों से ज्ञात हुआ तो वे वहां पहुंचे तो भेद खोला, किन्तु कोई मानने को तैयार ही न था। परम्परा के अनुसार किसी व्यक्ति की कब्र एक बार उखाड़ कर दूसरे स्थान पर बनाई जा सकती है। इसलिये, जब वहां से ''पीर गालड़ शाह'' की कब्र उखाड़ी गई तो अस्थि पंजर कुछ भी नहीं निकला, अलबत्ता बंद बोतल से उनके बाल अवश्य निकले। अन्ध विश्वास के कई उदाहरण हैं जिन्हें आस्था की संज्ञा दी जाती है। हमारे उपन्यास 'कैदी' में भी चंदू भगत की मण्डी का वर्णन आया है, जहां भक्त जन पच्चीस जूते खाते और राख प्राप्त करते, क्योंकि श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी।

श्रद्धा, आस्था और विश्वास को राजनीति से भी जोड़ दिया जाता है, भले ही विज्ञान उच्चस्तर पर ही क्यों न पहुंच गया हो। कई बार इन्हें देश के कानून और संविधान में भी स्थान मिल जाता है और कहा जाता है कि जन भावनायें हैं और समाज का सांस्कृतिक पहलू है।

ooo

गां० इंदिरानगर उधमपुर

'भया कबीर उदास' जीवन पर विजय की गाथा

❑ डा० अंजु थापा

'पचपन खम्बे लाल दीवारें', 'रूकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'अन्तरवंशी' जैसे सुगढ़ उपन्यास तथा नई कहानियों के दृश्यपटल पर धूम मचाने वाली लेखिका उषा प्रियम्वदा का नया उपन्यास 'भया कबीर उदास' उनकी विकास यात्रा का परिचायक है। यह उपन्यास देह के राग-विरागों, भय और आतंक से उभर कर नारी संवेदना से तो जुड़ता है साथ ही इसमें शरीर की पूर्णता-अपूर्णता का प्रश्न किसी-न-किसी स्तर पर मन से भी जुड़ गया है।[1] उपन्यास आरम्भ से लेकर अन्त तक इन्हीं प्रश्नों से जूझता है कि क्या सौन्दर्य के प्रचलित मानदंडों और समाज की रूढ़ दृष्टि के अनुसार एक अधूरे शरीर को, उन सब इच्छाओं को पालने का अधिकार है जो स्वस्थ और सम्पूर्ण देह वाले व्यक्तियों के लिए स्वाभाविक होती हैं। नारी को नारी बनाने, उसे सुन्दर बनाने वाले उसके शरीर के कुछ खास अंग जब नहीं रह जाते तो उसकी जिन्दगी में क्या बचता है। उपन्यास की नायिका लिली सम्पूर्ण उपन्यास में इन्हीं प्रश्नों से जूझती है।

लिली अमेरिका में अपना सहज और अल्पाकांक्षी जीवन जी रही होती है कि अचानक उसे पता चलता है कि उसे स्तन कैंसर है। वह तो अपने जीवन में आशा से परिपूर्ण थी, सपना था विश्वविद्यालय में प्रोफैसर बनने का एक नामी इतिहासज्ञ बनने का लेकिन कैंसर रूपी बीमारी का यथार्थ उसकी आँखों के सामने लहराने लगता है और रह जाती है मात्र पीड़ा-व्यथा तब मालूम नहीं था कि यह सब यों हो जाएगा, वह तो पढ़ने गई थी, इतिहास में पी० एच० डी० करके एक नामी इतिहासज्ञ बनने के लिए और लौटकर पापा के विश्वविद्यालय में प्रोफैसर बनना चाहती थी, उपकुलपति निवास के लॉन में बैठकर चाय पीना चाहती थी पर सब धीरे-धीरे समय के हाथों मिटता गया और रह गया है यह यथार्थ, कैंसर और तुम.....।''[2]

लिली व्यथित है कि कैंसर ने उससे उसका भविष्य उसके सपने छीन लिए। लिली ऐसी नारी है जो मरने से नहीं डरती। मगर वह घिसट-घिसट कर जीने से डरती है। उसके मन में हाहाकार रह-रह कर उठता है ''हाय मेरे भरे-भरे स्वर्ण कटोरों से उरोज, हाय मेरे नागिन जैसे लम्बे बाल सब इस कैंसर की आहुति।''[3] सब उसके संतुलित मन को असंतुलित कर देता है। सब कुछ सामान्य-सा लगता है लेकिन फिर प्रश्न उठता है मन में कि मुझे ही

आखिर क्यों फिर सोचने लगती है, "न कुछ बदलेगा कैंसर का प्रवेश एक ऐसी घटना थी जिसका उसे सपने में भी गुमान न था, उसने जिन्दगी का ढर्रा ही बदल दिया था, कम-से-कम उसने सतही और खोखली जिन्दगी को हिलाकर यथार्थ देखने को बाध्य कर दिया था।"[4] लिली पीछे मुड़ना चाहती है, पर वह सोचती है जाए कहां ? अगर बचपन और कॉलेज के सालों की याद में न ठिठकी रहे तो क्या करे ? बायौप्सी के बाद उसे लगा था कि वह एकदम बेबस हो गई है, सारे विकल्प सहसा केवल एक ही संकल्प में परिवर्तित हो गए हैं। वह अक्सर सोचती है कि "इस रोग के सन्दर्भ में युद्ध का रूपक क्यों प्रयोग किया जाता है? शायद इसलिए कि कुछ कोषाणु अपने ही शरीर में आतंकवादियों की तरह आततायी बन जाते हैं और स्वयं उसी को ही नष्ट करने लगते हैं। .... पर इस महायुद्ध की प्रकिया में तुम कैसे टूट जाती हो, बिखर जाती हो, आहत और क्षत-विक्षत कभी तो समझ नहीं आता कि रोग अधिक दारुण है या उसका उपचार।"[5] फिर भी लिली जीना चाहती है, आपरेशन कीमोंथरैपी रेडियेशन के डेढ-दो लम्बे वर्षों में थकान, स्वादहीनता और अवसाद के बावजूद लिली अपने को समेटती है, अपने में हिम्मत बांधती है, "घुटने समेटकर बाहों से उन्हें घेरकर अपना मुँह उनमें छिपा लेती है। वह रोएगी नहीं, जितना रोना था, रो चुकी है। प्रारम्भ में ही। अब दिल में अगर कुछ लगता है तो वह ठक से आवाज़ कर दूर तक गुंजरित होने लगता है।"[6] केवल 35 वर्ष की आयु में ही लिली जान चुकी है कि उसे कैंसर है। कुल जमा अधूरी थीसिस तीन वर्ष के कान्ट्रेक्ट पर अमेरिका के उत्तरपूर्वी भाग में भारतीय सभ्यता और प्राचीन इतिहास का अध्यापन का अनुभव और एकाकीपन यही उसके जीवन के अंग बन चुके हैं। उसका कण-कण शरीर का हर एक अणु एकदम थक गया है, वह हारने लगी है। वह जीना चाहती है। भले ही मन विरक्त और शरीर शिथिल हो पर अभी बहुत सारे काम बचे हैं करने को। वह सामान्य रहने का भरपूर प्रयत्न करती है। आशावादी होकर सोचती है कि " सब कुछ ठीक निकलेगा, जिन्दगी की गाड़ी उसी तरह पुरानी पटरी पर चल निकलेगी मुझे यह रोग हो ही कैसे सकता है ? कितना स्वच्छ सात्विक राग-द्वेष से परे जीवन जी रही हूँ।"[7]

सुन्दर होने के साथ-साथ लिली कुलपति पिता और अभिजात्य के प्रति सजग मां की लाड-प्यार में बिगड़ी अकेली संतान। लिली को कोई पुरुष अपने उपयुक्त नहीं लगता है। अपने से बौद्धिक या मानसिक किसी भी स्तर से अपने से कमतर जीवन साथी पाने की उसे आकांक्षा नहीं है। जिन्दगी से उसे कोई शिकायत नहीं जो कुछ है उसका स्वयं का चुना हुआ है उसके अनुकूल है "नए-नए विद्यार्थी, नई रिसर्च से उसका जीवन परिपूर्ण था।"[8] पर कैंसर की बीमारी उसके सन्तुष्ट जीवन में सेंध मार देती है। जीवन की निरर्थकता उसे कांटे की तरह चुभती है। बीमारी में अकेलेपन को भोगती है। यही अकेलापन उसे भीतर से खोखला करने लगता है वह सोचती है कि कोई तो हो जिसे वह अपना बना सके, अपना दुख सुना सके अपने अकेलेपन को बाँट सके अपने मन की बात कह सके लेकिन अगले ही पल वह इस सोच की झटक देती है यह सोचकर कि किसी का कन्धा भी नहीं चाहिए सुबकने के लिए इतने वर्ष किसी के मृदुल स्पर्श, सहानुभूति और सहचर्य के बिना बिता दिए थे। ...... यह घाव,

यह निशान केवल अपने हैं जो केवल त्वचा तक ही नहीं हैं बल्कि अन्दर तक गहरे और गहरे उतरते गए हैं।''[9] लिली को पल-पल यही लगता वह हारने लगी है जीवन छूट रहा है, हिम्मत जवाब दे रही है, जीवन की गति धीमी पड़ गई है ''पर आगे बढ़ना होगा...दुख माँजता होगा औरों को उसके लिए दुख एक तलविहीन जलविहीन कुआँ है, जिसमें वह बार-बार गिर जाती है और वहीं कहीं अटक गई है.... कोई नहीं उबारने आएगा उसे अगर बाहर आना है तो अपने आप, पर अभी वह समय नहीं आया है, अभी उसमें इतना साहस, इतनी इच्छा, बल नहीं है''[10] लिली का जीवन उस रेगिस्तान की तरह है जिसे ओस की बूँदो की चाहत है अर्थात् प्यार रूपी क्षणिक प्रेम की चाहत में वह तड़पती है। इसी चाहत में शेषेन्द्र नामक व्यक्ति की ओर खिंची चली जाती है उस प्रेम की तलाश में जिसे पाने के लिए वह तड़पती रही है। उसे पता है कि शेषेन्द्र विवाहित है उसके शिष्य रघु के पिता हैं लेकिन लिली को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता उसे न तो रिश्तों की चाहत है न उनमें बंधी रहना चाहती है। शेषेन्द्र लिली के कैंसर रूपी बीमारी से अनभिज्ञ है, लिली उसे जानने भी नहीं देना चाहती। प्रेम के अंतरंग क्षणों में वह अपने उन अंगों को शेषेन्द्र से बचाती फिरती है क्योंकि वह जानती है कि शेषेन्द्र का अपनी पत्नी से बिलगाव का कारण भी यही बीमारी रही थी। उसने शेषेन्द्र से ही जाना है कि ''चार पाँच साल पहले पत्नी को वक्ष कैंसर हो गया था। मैं अपनी या किसी और की बीमारी देख ही नहीं सकता, अस्पताल की गंध से मैं दूर भागता हूं। मैं उन्हें वैसा सहारा या आश्वासन न दे पाया जो एक पत्नी अपने पति से अपेक्षा करती है। मैं उनसे बहुत दूर-दूर चला गया। तभी मैं अपने बिजनेस को बेचने में व्यस्त था, आए दिन कभी जापान, कभी दक्षिणी कोरिया, कभी शंघाई के चक्कर लगाता रहता। जरूरत नहीं होने पर भी। और जब तक वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हुई, हमारे सम्बन्ध एकदम टूट चुके थे, टूट चुके हैं। मुझे यह कहने में बहुत शर्म महसूस होती है कि मैंने उसके बाद ज्योति को निरावरण देखना ही नहीं चाहा। मैं उनके घाव या निशान तक नहीं देख सका।''[11] पत्नी के प्रति शेषेन्द्र का व्यवहार लिली को उसकी जिन्दगी से निकलने को बाधित करता है। वह महसूस करती है कि शेषेन्द्र उसे कैसे अपना सकते हैं जबकि वे जिन्दगी में भी संगीत की तरह पूर्णता तलाशते हैं।

हस्पताल में लिली का परिचय अपर्णा और फिलिप्स से होता है जो लिली की तरह ही इस बीमारी को भोग रही है, मौत से जूझते हुए अपनों द्वारा दुत्कारी गई हैं। अपर्णा तो ज़िन्दगी की आखिरी सांस तक इस बीमारी से लड़ती है। वह प्रायः आशावादी बनी रहती है। उसकी बातों में कही भी निराशा नहीं झलकती वह अक्सर कहती है ''मैं इस बीमारी को पछाड़ कर ही रहूँगी....मैं आखिरी सांस तक इससे लड़ूंगी।''[12]

उपन्यास में फिलिप्स भी ऐसी नारी है जो परित्यक्ता है इस बीमारी के कारण लिली को आपबीती सुनाते हुए कहती है ''नहीं बदला तो मेरा पति। उसे तो जैसे एक नारी शरीर ही चाहिए था, मुझ में कुछ क्षति आ गई थी जैसे बच्चा एक टूट्य खिलौना फेंक देता है उसी तरह उसने भी''[13] लेकिन फिलिप्स अन्त तक हिम्मत नहीं हारती। वह अपना शेष जीवन आध्यात्मिक कार्य के लिए समर्पित कर देती है। बौद्ध धर्म के मूल्यों को आत्मसात करती

है। लिली की प्रेरणा बनती है फिलिप्स। लिली उसे श्रद्धांजलि देते हुए कहती है, ''फिलिप्स में कितनी हिम्मत थी, अनजान देश में जाकर रहना, बौद्ध धर्म के मूल्यों को आत्मसात करना उनसे अपना जीवन संवारना। फिलिप्स में भी तुमसे कुछ सीखूँगी, बात-बात पर हिम्मत छोड़ देना, हर बात पर रो पड़ना। इन सबसे उबारने की कोशिश करूंगी। यह मेरा तुमसे वादा है, यही तुम्हारी समाधि पर मेरी श्रद्धांजलि है।''

लिली की व्यथा या यूं कहें उसकी पीड़ा यहीं समाप्त नहीं होती। उपन्यास का वह अंश हिला देने वाला है जब लिली जानती है कि वह गर्भवती है परन्तु वह उस बच्चे को जन्म नहीं दे सकती क्योंकि कीमौथेरेपी रेडियशन के लम्बे-लम्बे दौर के बीच उसके गर्भ के सुरक्षित रहने की सम्भावना कम है। हस्पताल के डॉ० स्टुअर्ट उसके गर्भवती होने की सूचना देते हुए कहते हैं, तुम प्रेग्नेंट हो करीब-करीब तीन माह......मगर तुम्हे सुझाव देंगे इस प्रेग्नेंसी का अन्त करने को, कीमोथेरेपी शिशु को बहुत नुकसान पहुँचाती है, उसके नार्मल होने के चांसेज़ बहुत कम होते हैं।''[15] परन्तु लिली के सुखद पलों की स्मृति है यह बच्चा जो उसने शेषेन्द्र के साथ व्यतीत किए हैं। उसकी ज़िन्दगी के अनमोल उजले पल की स्मृति है यह बच्चा जिसे अपनी बीमारी के कारण उसे अपने शरीर से अलग करना पड़ता है। माँ बनने की सुखद अनुभूति वह अपने प्रेमी शेषेन्द्र से भी नहीं बाँट सकती, ''अगर सब कुछ नार्मल होता तो शायद शेषेन्द्र को बताती भी और सब कुछ नकारने के बाद भी शेषेन्द्र उस स्थिति में मुझे अकेला नहीं रहने देते भले ही वह अपने को कितना कायर और भीरु कहें।''[16] लेकिन अगले ही पल लिली की प्रतिक्रिया है, ''यह मेरा रणस्थल है। अकेले ही जूझना है मुझे।''[17] सब कुछ खोना पड़ता है उसे अपना बच्चा, अपना प्रेम, अपना प्रेमी, ''जीवन में शेषेन्द्र घटित हुए हैं, कैंसर घटित हुआ है और उसका निर्दोष शिकार वह शिशु जो यदि पैदा भी होता तो विकृत, अपंग माँस का पुतला ही होता। यह सब याद आते ही एक लम्बी आह सीने की परतों के नीचे से अपने-आप फूट पड़ती है...... आँसू अब नहीं बचे हैं।''[18]

लेखिका स्वयं नारी है शायद यही कारण है कि इतनी गहराई इतनी संवेदना इतनी प्रमाणिकता से उपन्यास में इस बीमारी, बीमारी जनित पीड़ा-दर्द-व्यथा को इतनी गहराई से उकेरा है शायद ही कोई उपन्यासकार इस तरह की संवेदना का सृजन कर पाता। ''बिना किसी सरोकार की तरफदारी का दावा किए, बिना किसी बड़े विमर्श के दंभ के लेखिका हमारे बीच की उस दुखती रग पर उंगलियाँ रख जाती है जो सृजन के इतिहास में (हिन्दी) अछूती-अनदेखी थी।''[19]

शेषेन्द्र के अतिरिक्त इस उपन्यास में एक और पुरुष पात्र है वनमाली। वनमाली लिली से प्रेम करता है। उसका लिली के जीवन में प्रवेश उसमें एक नई आशा का संचार करता है। अपनी बीमारी, पीड़ा अकेलेपन से क्षुब्ध होकर लिली अमेरिका से भारत भाग आती है और रहने लगती है वनराज के होटल में। उसे तो यह भी पता नहीं है कि जिस होटल में वह रह रही है वह वनराज का है। वनराज लिली के बचपन का साथी है उसके कुलपति

पिता के हैडमाली का बेटा है। बचपन से वनराज लिली को चाहता है उसकी एक झलक पाने के लिए वह न जाने कितने यत्न करता है। लिली उसका पहला प्यार है। लिली द्वारा वनराज को न बताए जाने पर भी वनराज जानता है कि लिली को कैंसर है, उसकी ज़िन्दगी लम्बे उपचार से निकली है। डाक्टरों के अनुसार लिली का जीवन कम-से-कम पाँच बरस या उससे थोड़ा अधिक है। प्रतिभा खंडित ही सही परन्तु वनराज के लिए आराध्य है। वनमाली को लिली के सपाट वक्ष, रुखे उदास चेहरे, लड़कों जैसे केशों से कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसका मानना है कि शरीर शाश्वत हो कि न हो प्रेम जरूर शाश्वत होता है। अधूरापन तन का हो सकता है मन का नहीं, जुड़ता जो है वह तो मन ही है।

लेखिका ने जहाँ शेषेन्द्र अपर्णा के पति फिलिप्स के पति का ज़िक्र किया है जो नारी को मात्र देह भोग की वस्तु समझते हैं। उनके लिए नारी का अस्तित्व उस खिलौने के समान है जिसको टूट जाने पर फेंक दिया जाता है, वहीं वनमाली जैसे पुरुष का चित्रण कर लेखिका ने उपर्युक्त पुरुष वर्ग के मुँह पर तमाचा मारा है।

वनमाली लिली के समक्ष विवाह प्रस्ताव रखता है जिसे वह सहर्षता से स्वीकार कर पाने की स्थिति में नहीं है लिली समझती है कि जब कैंसर ने उससे उसका भविष्य उसकी सृजनता छीन ली है तो वनमाली को भी उस पर बलि कर देना उसे स्वीकार न था। उसे लगता है कि वनमाली यदि उसे जीवन-साथी स्वीकार करता है तो यह उसके लिए जन्म-भर की सजा होगी। इस पर वनमाली की प्रतिक्रिया है कि "तुम यदि ऐसा सोचोगी, अपने शरीर को यही सन्देश भेजती रहोगी तो शायद हाँ, पर तुम एकदम सामान्य भी हो सकती हो।"[20]

वनमाली से पाया प्रेम विश्वास लिली को जीने की नई प्रेरणा देता है। यह उपन्यास जीवन पर विजय, निराशा पर आशा की गाथा है। एक ऐसी सबल नारी की शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा की गाथा है जो अन्त में अपना रोग, क्षोभ को बिसारते हुए जीवन से अपना हिस्सा, अपना सुख माँगते हुए जीवन पथ पर नया जीवन जीने के लिए अग्रसर होती है एक नई आशा की किरण के साथ "इसके साथ बिसारती हूँ, रोग, क्षोभ और पराजय......हर दिन एक नया दिन, एक तोहफा होगा। हर फूल अपने में चटकीला और धूप सुनहली, जो भी मिले उसी को ले लो हथेलियों में भर-भरकर निचोड़ लो हर सुख की बूंद-बूंद। प्रभु मैं ऐसे ही नत और प्रस्तुत रहूँ और तुम मेरी अंजुलि बार-बार भरते रहना।"[21]

सन्दर्भ

(1) उषा प्रियम्वदा-भया कबीर उदास – पृ० 1-12

2-14, 3-11, 4-143, 5-143, 5-14, 6-14, 7-29

8-47, 9-36, 87, 10-144, 11-59, 12-38, 13-83,

14-83, 15-83, 16-78, 17-79, 18-132,

19 – हस पत्रिका, अप्रैल-2008 पृ० 78

20 – 174, 21-174, 22-180, 179, 183

'बदलते सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में कृष्ण बलदेव वैद के नाटक'

❑ राधिका मेहता

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् परिवर्तनशील मान्यताओं और परिस्थितियों ने विभिन्न समस्याओं एवं विसंगतियों को जन्म दिया। व्यक्ति के सम्बन्धों पर इसका प्रभाव विशेष रूप से देखने को मिलता है। सम्बन्ध से अभिप्राय ऐसा बन्धन है जो बन्धन न लगे बल्कि जिसमें बंधकर व्यक्ति हमेशा आनन्दित रहे किन्तु अत्याधुनिकता के परिणामस्वरूप सारे सम्बन्ध बन्धन बनकर रह गये हैं। व्यक्ति अपने तक ही सीमित होकर रह गया है। जिसके परिणामस्वरूप सम्बन्धों में कटुता देखने को मिलती है। ईमानदारी, विश्वास एवं प्रेम का लोप होता जा रहा है। इन सबका वर्णन कृष्ण बलदेव वैद ने जीवन्त एवं सतर्क लेखकीय अभिव्यक्ति से अपने साहित्य में विस्तृत रूप से किया है। उनके नाटकों में बदलते पति-पत्नी सम्बन्ध, विवाह-पूर्व प्रेम-सम्बन्ध, वैवाहिक जीवन में तीसरे की उपस्थिति, बहन-बहन का सम्बन्ध, मैत्री सम्बन्ध, पड़ोसियों तथा अन्य रिश्तेदारों के सम्बन्ध, अभिजात्य वर्ग और निम्न वर्ग के सम्बन्ध तथा माता-पिता और संतान-सम्बन्धों का खुलकर चित्रण हुआ है।

पारिवारिक सम्बन्धों में माता-पिता और सन्तान का सम्बन्ध एकमात्र अनौपचारिक सम्बन्ध है जिसमें एक-दूसरे के लिए स्नेह, सहानुभूति होती है किन्तु पाश्चात्य प्रभाव औद्योगीकरण ने जहां बाकी सम्बन्धों को अपनी चपेट में लिया वहीं माता-पिता और सन्तान सम्बन्धों में भी व्यक्तिवादिता आ गई। सन्तान के साथ-साथ माता-पिता के व्यवहार में कटुता और उपेक्षा की भावना आई। फलस्वरूप दोनों के ही आपसी सम्बन्धों में से स्नेह और सम्मान गायब होता जा रहा है। एक समय था जब संतान में अपने माता-पिता के प्रति सम्मान की भावना निहित थी। वह अपने माता-पिता की किसी भी बात का उल्लंघन नहीं करते थे और न ही उनकी बात में हस्तक्षेप ही करते थे लेकिन आज वे अपने माता-पिता के लिए अपशब्दों तक का भी प्रयोग करते हैं। नाटक 'परिवार अखाड़ा' में जब पति-पत्नी आपस में झगड़ रहे होते हैं तो बच्चे उनसे कहते हैं – 'हम नहीं जानते थे तुम दोनों अभी तक इतने जाहिल हो' – 'हम नहीं जानते थे तुम दोनों अभी तक इतने घटिया हो' – 'तुम दोनों सचमुच बेहूदा हो' – 'तुम दोनों पहले से ही पागल हो' माता-पिता के सम्बन्धों में जब तनाव हो, तो उसका प्रभाव बच्चों पर पड़ना स्वाभाविक है। ऐसे में बच्चों का बिगड़ना भी निश्चित है। माँ-बाप के लिए 'जाहिल, घटिया, बेहूदा, पागल', जैसे शब्दों का प्रयोग बच्चों के बिगड़ेपन को ही दर्शाता है। बदलते समय में टूट रहे मानवीय मूल्यों के चलते अच्छे की उम्मीद रखी भी नहीं जा सकती।

सन्तान अपने वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके माँ-बाप को अपने पास रखना नहीं चाहती क्योंकि तब वह उनको कमाकर कुछ नहीं दे सकते। ऐसे में कमाई का साधन बनाने के लिए उनके बुढापे की भी प्रदर्शनी लगाकर कमाई करने का ढँग सोचा जाता है। 'हमारी बुढ़िया' में माँ और उसके खण्डहर से पैसा कमाने की योजना बनाते हुए उनके बच्चे बहुत दूर की बात सोच लेते हैं कि यदि बुढ़िया हमें ऐसा नहीं करने देगी तो हम उसे लोगों के सामने पागल कह देंगे –

''मर्द-2 : कह देंगे यह पागल है।
औरत-1 : पहुँची हुई पागल है।''

पहले माँ-बाप बच्चों को बड़ों का मान-सम्मान करने और अन्य संस्कार देते थे। उनके दाम्पत्य जीवन में कितना भी मन-मुटाव क्यों न हो लेकिन वे बच्चों को अपने सम्बन्धों को लेकर हस्तक्षेप की अनुमति नहीं देते थे किन्तु आज स्थितियाँ इतनी भयावह हो गई हैं कि माँ-बाप दोनों ही आपसी मन-मुटाव के चलते बच्चों को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा करने में किसी प्रकार की बुराई नहीं समझते। 'परिवार अखाड़ा' में पति-पत्नी दोनों के सम्बन्ध विश्रृंखलित हैं। ऐसे में वे दोनों अपने बच्चों को भी अपने-अपने ढंग से उकसाते हैं। पत्नी बच्चों को कहती है – 'अपने बहके हुए बाप की बात मानोगे तो बर्बाद हो जाओगे' तो पति भी कहां कम है। वह भी उन्हें इस प्रकार कहता है – 'अपनी बेवक़ूफ़ माँ की बात मानोगे तो बर्बाद हो जाओगे।' जिस परिवार में पत्नी अपने पति के लिए 'बहका हुआ' और पति-पत्नी के लिए 'एक बेवक़ूफ़ माँ' कहता हो वहाँ बच्चे अपने मां-बाप के लिए कितना सम्मान रख सकते हैं।

पारम्परिक सम्बन्धों में माता-पिता के सामने यदि बच्चे परिवार में या परिवार से बाहर कोई भी गल्त कार्य या कहीं भी अपशब्दों का प्रयोग करते उन्हें उचित दंड दिया जाता, समझाया जाता था ताकि उन गल्तियों को वे न दोहरायें आज वही मां-बाप बच्चों को गल्त बातों पर टोकने की जगह उनकी बातों का समर्थन करते हैं। उक्त नाटक में जब बच्चे पति-पत्नी को जाहिल, बेहूदा, घटिया, जैसे अपशब्द बोलते हैं तो पिता बच्चों की बातों का समर्थन करते हुए कहता है – 'शाबाश मेरे बच्चो! बिल्कुल बेधड़क और बेलिहाज़ होकर बोला करो इसी तरह। शाबाश।' मां-बाप उस समय यह भूल जाते हैं कि इस गलत शिक्षा का भुगतान उन्हें स्वयं ही भुगतना पड़ेगा।

दाम्पत्य सम्बन्धों में प्रेम का स्थान आज तनाव और झगड़ों ने ले लिया है जिसके परिणामस्वरूप बच्चे दु:खी एवं घुटन भरा जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाते हैं। 'परिवार अखाड़ा' में एक ऐसे परिवार का चित्रण है जो एक अखाड़ा मात्र है, जिसमें पति-पत्नी हर समय तनावग्रस्त रहते हैं, दूसरों को लेकर झगड़ते हैं फिर भी एक-साथ रहने को विवश हैं। कभी एक-साथ रहने की विवशता का कारण बच्चे रहे और कभी अपनी बढ़ती उम्र। त्रासंद जीवन जीते हुए माता-पिता ने कभी अलग होने की बात नहीं सोची किन्तु उनकी

उस बदहाली से परेशान बच्चे उन्हें एक-साथ नहीं देखना चाहते। वे उन्हें तलाक लेकर सुखद जीवन जीने की सलाह देते हैं – 'शायद इन दोनों को अलग हो जाना चाहिए। शायद इन दोनों को साथ होना ही नहीं चाहिए था।'

समय इतना बदल गया है कि आजीवन कशमकश में रहने से तो तलाक लेकर स्वतन्त्र होना ही उचित लगने लगा है। यदि एक पीढ़ी लड़ते-झगड़ते जीवन बिता रही है तो आने वाली पीढ़ी जो उनकी सन्तान है उनके सम्बन्धों से बेहद परेशान है। यदि वे अलग नहीं होना चाहते तो उनके बच्चे ही उन्हें छोड़कर जाना उचित समझते हैं क्योंकि हर रोज़ के झगड़े और किचकिच को वे कतई पसन्द नहीं करते। उन्हें माँ-बाप की उम्र का कोई ध्यान नहीं। 'परिवार अखाड़ा' में बच्चे माँ-बाप के झगड़ों के कारण उन्हें छोड़कर चले जाने की बात करते हैं। वे कहते हैं कि उन दोनों ने उनका दम घोंट रखा है इसलिए वे ही उन्हें छोड़कर जाना चाहते हैं –

'बच्चे : हम जा रहे हैं।
पति पत्नी : कहाँ ?
बच्चे : घर छोड़ कर।'

दाम्पत्य सम्बन्धों में कलह-क्लेश को लेकर कई बार तो पूरी जिन्दगी बीत जाती है पर कोई निर्णय नहीं निकलता किन्तु आज की पीढ़ी अपने माँ-बाप की तनावपूर्ण जिन्दगी से परेशान हो स्वयं ही उनसे मुक्त होने का रास्ता खोज निकालती है ताकि उनका जीवन तो अच्छी तरह व्यतीत हो। 'परिवार अखाड़ा' में ही पति-पत्नी तो लड़ते-झगड़ते जीवन बिता रहे हैं किन्तु जब उनकी स्थिति से दुःखी हो बच्चे ही उन्हें छोड़ने का निर्णय लेते हैं तो वही माँ-बाप उन्हें शाप देते हैं –

'पति : जहाँ जाओगे, दुखी रहोगे।'

माता-पिता और सन्तान के आपसी वैमनस्य के चलते सन्तान उनके व्यवहार से बेहद दुःखी रहती है और उनके झगड़ने और फिर इकट्ठे रहने को एक नाटक की तरह समझती है। इससे बड़ी बात माँ-बाप के लिए क्या हो सकती है जब बच्चे उनके इस तरह के व्यवहार को अर्थात् हर समय एक-दूसरे पर कटाक्ष करना तनावमयी स्थितियों में एक-दूसरे के साथ रहने को भी नाटक कहें। 'परिवार अखाड़ा' के बच्चे अपने माँ-बाप के एक-दूसरे से अलग न होने की बात को लेकर स्वयं ही उनसे दूर होने की बात करते हैं और उनके उक्त व्यवहार को हमेशा के लिए बन्द करने की सलाह देते हैं – 'बन्द करो यह नाटक!' जिन बच्चों के लिए माँ-बाप अपनी सारी खुशियाँ न्यौछावर कर स्वयं बोझिलता से भरा, बेहद कष्टमय जीवन व्यतीत करते हैं वही बच्चे बड़े होने पर उनके कृतज्ञ होने की जगह उन्हें ढोंगी, अभिनयकर्ता तक कहने से परहेज़ नहीं करते। जहाँ 'परिवार अखाड़ा' के बच्चे अपने माँ-बाप को जो आजीवन स्वयं एक-दूसरे से असन्तुष्ट रहते हुए भी उनकी खातिर एक-साथ रहे को 'नाटक

करना' कहते हैं। वहीं 'हमारी बुढ़िया' में बूढ़ी माँ की बीमारी उन्हें ढोंग लगती है। बूढ़ी माँ बीमार होने तथा बच्चों के व्यवहार के कारण बोल नहीं पाती, वे इसे उसका अभिनय कहते हैं। निम्नलिखित संवाद इसके परिचायक हैं-

"मर्द-2 : ज़िन्दा तो है लेकिन मौत का अभिनय कर रही है।
औरत-1 : मौत का नहीं नींद का।
मर्द-3 : नींद का नहीं बेहोशी का।
औरत-2 : बेहोशी का नहीं बीमारी का।
मर्द-1 : अभिनय भी, बहाना भी।"

पारम्परिक सम्बन्धों में माँ-बाप पूजनीय थे किन्तु आज माँ-बाप का सम्मान भी दिखावे की वस्तु बनकर रह गया है। माँ-बाप के साथ बुरा व्यवहार समाज से आँख चुराकर ही करना है। कहीं-न-कहीं समाज का भय उन्हें है पर मां-बाप के प्रति सम्मान या प्रेम की भावना सिरे से गायब है। 'हमारी बुढ़िया' में बच्चे अपने अच्छे-अच्छे घर बना लेते हैं तो मां को अपने साथ रखने को तैयार नहीं। उसे वहीं अपने टूटे-फूटे खण्डहरनुमा घर में ही रखने की योजना बनाई जाती है किन्तु समाज का भय उन्हें बना रहता है। प्रश्न उठता है कि मां को खण्डहर में रखेंगे तो लोग क्या कहेंगे ? एक नया तरीका उन्हें सूझता है कि वे लोगों को यह कह सकते हैं -

"कहेंगे यह खंडहर बुढ़िया को भाता है।
यह खंडहर हमारी विरासत है।"

पहले बच्चे अपने माँ-बाप को अपना सब कुछ मानते थे किन्तु आज इन बच्चों को ऐसा महसूस होता है कि उनके मां-बाप को अपने बच्चों की कोई परवाह नहीं और बाहर के लोग जिनमें हमारे अड़ोसी-पड़ोसी, रिश्तेदार आते हैं वही उनके हितैषी हैं और बच्चे इसलिए दूसरों को ही अपना सब कुछ मानते हैं। नाटक 'परिवार अखाड़ा' में जब 'दूसरे' बच्चों को अपने माता-पिता के विरुद्ध खड़ा करने में कामयाब हो जाते हैं तो बच्चे भी अपने मां-बाप के लिए यहां तक कह देते हैं कि न "इन्हें बच्चों की परवाह है न दूसरों की।" सन्तान इतनी कृतघ्न हो गई है कि थोड़ा-सा बड़ा होने पर उसे मां-बाप की कोई आवश्यकता ही महसूस नहीं होती उनके मां-बाप हों या न हों इससें उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। 'परिवार अखाड़ा' ही में बच्चे कुछ तो मां-बाप के अपने तनाव के कारण और कुछ दूसरों के बहकावे में आकर यहां तक कह देते हैं कि, "अब हमारे लिए तुम दोनों का होना न होना बराबर है।"

पारम्परिक सम्बन्धों में बच्चे अपने मां-बाप के सदैव ऋणी होते थे कि उन्होंने उन्हें जन्म देकर संसार दिखाया है, पाला-पोसा है किन्तु आज ऐसा बिल्कुल नहीं। आज के बच्चे इस बात का ज़रा भी एहसान नहीं मानते कि उनके मां-बाप ने उन्हें जन्म दिया है। 'परिवार अखाड़ा' में जब 'दूसरे' बच्चों की तरफ़दारी करते हुए उनकी बदतमीज़ी को बढ़ावा देते हैं

तो मां-बाप उन्हें (दूसरों को) अपने जीवन से बाहर निकालने को कहते हैं, लेकिन बच्चे मां-बाप से अधिक उन पर विश्वास करते हैं। मां-बाप के पास बच्चों को अपनी तरफ़ करने का कोई उपाय नहीं रह जाता तो वे उन्हें जन्म देना अपना अपराध कहकर उक्त प्रयास करते हैं इस पर दूसरों द्वारा बहकाये बच्चे यह कहने से भी नहीं हिचकिचाते कि – ''हम पर कोई एहसान तो नहीं किया!

''अगर हम से पूछ लिया होता तो हम कहते मत करो।''

बच्चों की उच्छृंखलता यहां तक बढ़ गई है कि मां-बाप उनकी बातों से दुःखी होकर मृत्यु तक चाहने लगते हैं। यद्यपि बच्चों के उच्छृंखल व्यवहार मात्र से ही मां-बाप एक तरह से अपने आपको मरा ही समझते हैं। उक्त नाटक में दूसरों के बहकावे में आकर उदण्ड हुए बच्चे मां-बाप को यहाँ तक कह देते हैं – ''...तुम दोनों ने हमारा जीना हराम कर रखा है।'' इससे बढ़कर बच्चों की माता-पिता के प्रति उदण्डता क्या हो सकती है जब पिता उनसे कहता है कि यह बद्तमीज़ी उन्होंने किससे सीखी ? तो वे यह कहने में एक पल भी नहीं लगाते कि – 'तुम दोनों से।'

आज बच्चे अपने मां-बाप की परवरिश उनके पालन-पोषण को नकारते हैं। उनका मानना है कि उनके मां-बाप ने उन्हें जीवन में कुछ भी नहीं दिया और जो कुछ भी उनके पास है वह सब उन्होंने अपने बलबूते पर हासिल किया है। 'परिवार अखाड़ा' में बच्चों के व्यवहार से दुःखी माता-पिता बच्चों से कहते हैं कि उन्हें अपने मां-बाप से प्रेम नहीं है तो बच्चे इसके लिए उन्हें ही दोषी करार देते हुए कहते हैं – 'इन्होंने हमें कुछ नहीं दिया, कुछ भी नहीं।' किन्तु आज बच्चे अपनी कमियों का सेहरा अपने मां-बाप के सर ज़रूर बाँधते हैं। वे यह मानने को कदापि तैयार नहीं कि उनकी कमियों और उनके दोषों का कारण वे स्वयं हैं। 'हमारी बुढ़िया' नाटक में अपने अन्तर्मन से बच्चों को यह भी पता है कि वे माँ की रक्षा नहीं करते, वे स्वार्थी हैं, अधर्मी हैं तो दूसरे ही क्षण इस सबका दोषी माँ को मानते हुए कहने लगते हैं कि हम जो भी हैं माँ की ही देन हैं –

''मर्द-1 : हमारे दोष इसके दोष!
मर्द-2 : सारा दोष इसी का है!
औरत-1 : हमने इसका दूध पिया है!
मर्द-3 : सारा दोष इसी के दूध का!''

अपने दोषों को माँ-बाप के द्वारा दिए अनुवांशिक दोष मानकर आज की पीढ़ी मुक्त हो जाना चाहती है किन्तु बात यदि संस्कारों की या मानवीय मूल्यों की हो तो यह पीढ़ी पूरी तरह से मूल्यहीन साबित होती है। वही माँ-बाप जिन्होंने जन्म दिया, पाला, बुढ़ापे में आकर बच्चों के द्वारा तिरस्कृत हो जाते हैं, घर से निकाल दिए जाते हैं। बच्चे उनकी उस बदहाल स्थिति में उन्हें पहचानने से भी इन्कार करते हैं। 'हमारी बुढ़िया' में बुढ़िया खण्डहर में बेसुध

पड़ी हुई है। बच्चे जिनके अपने घर बन चुके हैं मां को घर लाना नहीं चाहते। कोशिश यहाँ तक की जाती है कि किसी को यह पता न चले कि यह किसकी माँ है। नाटक में बुढ़िया के बच्चों के प्रतीक मर्द और औरतें आपस में यह सलाह करते हैं कि, 'हमारी कोशिश होनी चाहिए हमें पता ही न चले यह हमारी माँ है' से स्पष्ट है कि वे नहीं चाहते कि उन्हें इस असलियत का सामना करना पड़े कि वह उनकी माँ है क्योंकि यदि इस असलियत से उनका सामना हो गया तो उन्हें माँ को अपने घर ले जाना पड़ेगा जोकि वे कदापि नहीं चाहते। पारिवारिक मूल्यों में सबसे क्रांतिकारी बदलाव यह आया कि बूढ़े मां-बाप को अपने साथ कोई भी रखना नहीं चाहता। उनकी ढलती उम्र के साथ ही वे बोझ करार कर दिए जाते हैं जबकि पारम्परिक पारिवारिक मूल्यों में ऐसा सोचना भी पाप समझा जाता था। मां-बाप के प्रति अपमानजनक रवैया रखना और उस पर फिर यह भी प्रदर्शित करना कि वे अपने बीमार-बूढ़े माँ-बाप के प्रति बेहद संवेदनशील हैं-वही उनके साथ सहयोग नहीं कर रहे-वर्तमान समाज में एक आम बात हो गई है। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि सन्तान समाज में यही कह कर अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करती है कि वे अपने मां-बाप को सम्मान दे रहे हैं वही उन्हें इसके योग्य समझते। आलोच्य नाटक में भी बुढ़िया के बच्चों का आपसी वार्तालाप उनकी उक्त मानसिकता का परिचायक है –

''मर्द-1 : वे सन्तान का इम्तहान लेते हैं।
मर्द-2 : किसी को पास नहीं होने देते हैं।''

आज के बच्चे अपने मां-बाप को अपने साथ रखने को हरगिज़ तैयार नहीं। वे चाहते हैं कि उनके मां-बाप कहीं पर भी रहें किन्तु उनके साथ नहीं। इसके लिए वे उनके लिए एक नया घर भी बनवाने को तैयार रहते हैं। 'हमारी बुढ़िया' में निम्नलिखित संवाद मां-बाप को लेकर बदलती हुई अवधारणा के अच्छे उदाहरण हैं –

''मर्द-1 : जब तक वह घर नहीं बनता यह कहाँ रहे ?
मर्द-2 : तब तक यह यहीं रहे ?
औरत-1 : इस खंडहर में ?''

यदि मां-बाप को घर ले जाने की बात आ जाए तो प्रश्न यह उठता है कि जिस घर में मां-बाप को लिया जाए वह किसका घर हो ? अर्थात् वह कौन है जो इनकी ज़िम्मेवारी उठाये – वे चाहते हैं कि उनके दूसरे भाई-बहन भी यह ज़िम्मेदारी बारी-बारी उठायें –

''मर्द-2 : मैं फिर कहूँगा हम इसे घर ले जाएं।
औरत-1 : सवाल यह है कि किस घर ले जाएं ?
मर्द-3 : वह घर हममें से किसका हो ?''

आज बच्चे अपने मां-बाप को तो अपने साथ नहीं रखना चाहते और यदि स्वयं उनके साथ रहते भी हैं तो मात्र धन को प्राप्ति के लिए जबकि पहले बच्चों के हृदय में ऐसे भाव कभी

भी नहीं आते थे। वे यदि अपने मां-बाप के साथ रहते थे तो केवल अपना कर्त्तव्य समझकर उनकी सेवा के लिए किन्तु आज सारे सम्बन्धों में अर्थ हावी हो गया है। प्रत्येक सम्बन्ध धन के तराजू पर तोलकर निभाया जाता है फिर चाहे मां-बाप ही क्यों न हों। जायदाद के लिए बच्चे उन्हें झेलते हैं अन्यथा वे हर समय उनसे अलग होकर रहने को तैयार रहते हैं। 'परिवार अखाड़ा' में जब 'दूसरे' बच्चों से कहते है कि उन्हें अपने मां-बाप से अलग हो जाना चाहिए तो बच्चे कहते हैं – "अलग हो जाएँगे तो ये हमें जायदाद नहीं देंगे।"आज के बच्चे धन की लालसा के लिए इतना नीचे गिरते जा रहे हैं कि मां-बाप के घर को ही नहीं बल्कि मां-बाप को भी गिरवी रखने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। 'हमारी बुढ़िया' में बच्चे खण्डहर (जोकि उनकी मां का घर है)को गिरवी रखने की योजना बनाते हैं फिर उन्हें यह अशंका भी है कि बुढ़िया इसका विरोध कर सकती है। इस पर वे उसे भी गिरवी रखने की सोच लेते हैं –

"मर्द-3 : न माने फिर!
औरत-2 : जो करना है सो करना है।
मर्द-1 : बुढ़िया खुद खंडहर है।"

सब मिलकर : हम इसको भी फिर गिरवी रख देंगे।" स्पष्ट है कि बच्चों में आज धन की लालसा इतनी प्रबल हो गई है कि वे अपनी मां को भी बेचने से पीछे नहीं हटते।

वे इतना ही नीचे नहीं गिरते बल्कि धन के लालच में फँसकर अपनी मां का कायाकल्प ही करवा देने की बात भी सोच लेते हैं –

"मर्द-1 : बुढ़िया का काया-कल्प करवा देंगे।
मर्द-2 : झुर्रियाँ सब झड़वा देंगे।
औरत-1 : बाल कटवा देंगे।
मर्द-3 : जीन्ज़ बनवा देंगे।
औरत-2 : गिट-गिट सिखला देंगे।
मर्द-1 : बुढ़िया पहचानी नहीं जाएगी।
मर्द-2 : शादी करवा देंगे।"

इससे बढ़कर मानवीय मूल्यों का ह्रास क्या होगा जहाँ मां को एक आधुनिक पोशाक पहनाकर, अँग्रेज़ी भाषा सिखाकर उसका विवाह तक करवाने की बात बच्चे सोचें। लालची संतान हर संभव ढंग से पैसा बटोरना चाहती है। इसके लिए अनेक संदेह, अनेक विचार उनके मन-मस्तिष्क में आते हैं। एक तो विचार यह था कि बुढ़िया की कायाकल्प करवाकर उसकी प्रदर्शनी लगाकर पैसा कमाया जा सकता है। एक दूसरा संदेह यह भी पैदा होता है कि सम्भव है कि उसको सजाने-संवारने से उतना पैसा न मिले दूसरों की हमदर्दी प्राप्त करने के लिए बुढ़िया और खण्डहर दोनों की अधिकाधिक जर्जर स्थिति कर दी जाए ताकि विदेशी यात्री उनकी स्थिति को देखकर कुछ दे दें तो वे

निम्नलिखित योजना बनाते हैं-

''औरत-2 : हम खंडहर को खिलने नहीं देंगे।
मर्द-1 : हम बुढ़िया को हिलने नहीं देंगे।
मर्द-2 : खंडहर को और भुरभुराएँगे।
औरत-1 : बुढ़िया को और जरजराएँगे।
मर्द-3 : विदेशी विशेषज्ञों को बुलाएँगे।
औरत-2 : उनसे कहेंगे : इन दोनों को और दीन बना दो।
मर्द-1 : दीन लेकिन दिलचस्प।''

विघटित हो रहे पारिवारिक मूल्यों के चलते बच्चों से क्या अपेक्षाएं हो सकती हैं उन्हें तो पैसा चाहिए चाहे चोरी करके ही क्यों न मिल जाए। चोरी करके धन कमाने में पकड़े जाने का भय तो बराबर रहता ही है किन्तु इसके लिए भी समाधान है और वह है कि यह चोरी किसी बुरी भावना से प्रेरित होकर नहीं की गई। इसके पीछे किसी का हित निहित है- यह कहकर भी चोरी के दोष से मुक्त हुआ जा सकता है। 'हमारी बुढ़िया' में धन कमाने की सोच में डूबे बच्चे भी यही करने की सोचते हैं कि यदि चोरी करते हुए पकड़े जाएँगे तो सारी ज़िम्मेदारी अपनी माँ पर ही डाल देंगे -

''औरत-1 : कहेंगे हमने जो किया इस बुढ़िया की ख़ातिर।
मर्द-3 : इसे ऊपर उठाने के लिए।
औरत-2 : इसे बाहर ले जाने के लिए।
मर्द-1 : इसका इलाज करवाने के लिए।
मर्द-2 : इसका सुहाग लौटाने के लिए।''

सन्तान इतनी स्वार्थी हो चुकी है कि मां-बाप को अपने साथ रखने को भी तैयार नहीं सेवा की तो बात दूर है। उस पर उनको जीवित भी रखना चाहते हैं क्योंकि जब तक वे ज़िन्दा हैं उनके बच्चों का लालन-पालन हो जाएगा। उक्त नाटक में ही बुढ़िया के बच्चे भी इस तरह की सोच रखते हैं-

''औरत-2 : वह चल बसी तो हमारे बच्चों को कहानियाँ कौन सुनाएगी?
मर्द-1 : लोरियाँ कौन देगी ?''

मां-बाप की यह त्रासदी है कि पहले अपने बच्चों को पालपोस कर बढ़ा किया फिर उनके बच्चों को पालने के लिए जीवित रहना है। एक सीमित आयु तक तो बच्चों को भी उनका भय रहता है किन्तु बढ़ी हुई आयु के साथ जब शारीरिक क्षमता कम हो जाती है तो संतान उनसे डरना भी छोड़ देती है सम्मान करने की तो बात ही नहीं। 'हमारी बुढ़िया' में जब बच्चे अपनी बूढ़ी माँ को जगाने हेतु झंझोड़ने की बात करते हैं तो मर्द-1 के यह कहने पर कि उठकर मां यदि उन पर टूट पड़ी तो ? तब मर्द-2 का यह कथन-'इसके टूट पड़ने

के दिन बीत गए।' स्पष्ट करता है कि अपनी ही सन्तान उन्हें दुर्बल समझकर उनके प्रति दुर्व्यवहार करने से भी पीछे नहीं हटती।

परम्परागत सम्बन्धों में बच्चे यही प्रार्थना करते थे कि उनके मां-बाप की लम्बी उम्र हो किन्तु आज के बच्चे चाहते हैं कि उनके मां-बाप मर जाएँ। जिन बच्चों ने बूढ़े मां-बाप के प्रति सहानुभूति या प्रेम कभी नहीं दिखाया आजीवन उनके प्रति उपेक्षा ही दिखाई वे भी उनके मर जाने में ही अपना कल्याण समझते हैं। 'हमारी बुढ़िया' नाटक में जब औरत-2 माँ के लिए कहती है, ''और फिर शायद अब इसके चले जाने में ही इसकी भलाई हो'' तो मर्द-1 कहता है- ''और हमारी भी।'' स्वाभाविक मौत मरने की बात समझ में आती है पर स्वयं मारने की बात भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की धज्जियाँ उड़ाकर रख देती है। 'परिवार अखाड़ा' में जब पति-पत्नी दूसरों और बच्चों के कटुतापूर्ण व्यवहार से तंग आ जाते हैं तो वे मर जाने की कामना व्यक्त करते हैं तब उनके बच्चे यह कहते हैं कि- 'यह काम हमारा है'- माता-पिता और संतान के सम्बन्धों की भयंकर त्रासदी को उजागर करता है।

उनके नाटकों के मूल में मध्यवर्गीय समाज और उनके जीवन की विडंबनाएं हैं। रिश्ते तो हैं, परन्तु उनके बीच कभी न भरने वाली गहरी खाई भी है। अनचाहे संबंध, समझौते और उस पर उन संबंधों को झेलने की मजबूरी, जीवन की व्यर्थता का बोध और उसे जीने की विवशता। इस त्रासदी से उभरने का प्रयास, किन्तु न उभर पाने की लाचारगी-तो कहीं सामान्य रूप से स्वीकारिता भी है। क्या यही दशा हमारे मध्यवर्गीय समाज की नहीं? क्या यही परिस्थितियाँ आज के हमारे मध्यवर्गीय जीवन की कड़वी सच्चाई नहीं? क्या यह हमारे सामाजिक परिवेश से उत्पन्न त्रासदी नहीं?

दरअसल विभाजन और उसके साथ ही निर्वासन एक ऐसी परिस्थिति थी जिसने वैद को सबसे अधिक प्रभावित किया। देश के विभाजन ने उनकी हर कृति, हर अनुभव पर गहरी छाप छोड़ी है। उनका बचपन गहन अभाव, कठिनाई और भय में गुज़रा और वही उनकी सृजन-शक्ति का मूल स्त्रोत बना।

संक्षिप्त में वैद के नाटकों के विषय में कहा जा सकता है कि उनके नाटकों की वैचारिक यात्रा यथार्थवाद से प्रयोगधर्मिता तक की है किन्तु न तो उनके नाटक सही मायने में यथार्थवाद के करीब ठहरते हैं और न ही उनके प्रयोगों को शुद्ध प्रयोगधर्मिता कहा जा सकता है। बल्कि वह प्रयोग के माध्यम से मध्यवर्गीय समाज के सत्य की खोज करने की इच्छा रखते हैं। निःसंदेह इस कोशिश में वह कभी-कभी अजनबी से लगने लगते हैं। उनका कला-कौशल कभी-कभी पाठक-वर्ग में खीझ भी उत्पन्न कर देता है। लेकिन यह भी उनकी प्रयोगधर्मिता का एक हिस्सा ही है और यह कतई ज़रूरी नहीं कि हर प्रयोग सफल ही हो। वैद स्वयं अपने प्रयोगों को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते हैं क्योंकि उनका मानना यह है कि 'जिस दिन मैं संतुष्ट हो जाऊंगा, काम करने की बेहूदा जिद से आज़ाद होकर अटूट नींद की आगोश

में जा गिरूंगा। मैं अपने काम से संतुष्ट नहीं, इसीलिए काम करता जा रहा हूं।' अन्ततः वैद के नाटकों के प्रति कहा जा सकता है कि वह 'वाद' के प्रति प्रतिबद्ध हों या न हों, परन्तु प्रयोगधर्मिता के प्रतिबद्ध अवश्य हैं।

०००

शोध-छात्रा, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

बेटियां

❑ अमिता मेहता

बेटा है कुल का दीप तो बाती हैं बेटियाँ
सिर गर्व से हम सबका उठाती हैं बेटियाँ
सुख-दुख के दिन हों या हो खुशी का कोई मौसम
चन्दन की तरह छाँव लुटाती हैं बेटियाँ
बेटों से वंश बेल सदा आगे है बढ़ती
पर बहुएं भी तो होती हैं किसी की बेटियाँ
अबला समझ के न इनको बदनाम तुम करो
दुर्गा का रूप धर के भी आती हैं बेटियाँ
रिश्ते हैं सभी स्वार्थ के कुछ और क्या कहें
पर उम्र-भर रिश्तों को निभाती हैं बेटियाँ
जब चली जाती हैं ब्याह कर ससुराल में
तब आँखों में आँसू बनकर झिलमिलाती हैं बेटियाँ

०००

96/3 नानक नगर, जम्मू

विदा हो जाओ खिलकर

❑ ओ०पी० शर्मा 'विद्यार्थी'

फूल पौधों की शोभा होते हैं, हरी चुनरियां के रंग होते हैं, तितलियों भंवरों का प्यार होते हैं, पक्षियों का दुलार होते हैं, फूल प्रकृति के उपहार होते हैं, रंग-रूप इनके नाना प्रकार होते हैं, खिलने के लिये इन्तजार होते हैं, परांगण के लिये छुपे आहार होते हैं, रंगों की चमक, खूबसूरती के दीदार होते हैं।

फूलों का धनी मौसम बसंत होता है, बर्फ पहाड़ की चोटियों पर, नीचे बर्फ का अंत होता है, खिलने को आतुर हो जाते हैं कितने कंद, बर्फ में ठिठुरे मिट्टी में नहीं रह पाते बंद, कोसी धूप दुलार लगाती है, मौसम बहार फूल सजाती है, रंगों की बौछार हरियाली में, फूल खिल उठते हैं बसंत की थाली में।

बर्फ की सफेदी में स्वर्णिम हिरणतूती का फूल अचानक खिलने लगता है, पत्तों का इन्तज़ार कौन करे, फूल पहले ही घूंघट उठा लेते हैं। कश्मीरी कहें विरकिमपोश, किश्तवाड़ी कहें चिंगपोश, डोगरे कहें सरुंजां, कुछ कहें बर्फ बसंत। फरवरी-मार्च में खिलने वाला सुंदर फूल है हिरणतूतिया। इसके कंद में औषधियों के गुण विद्यमाण होते हैं।

बर्फ की अर्ध पिघली चुनरिया में एक से बढ़कर एक फूल खिलने लगता है। हिरणतूतिया खिलते ही, अनेक पौधे खिलने की ठान लेते हैं। पीतसेवती के फूल एकाएक बर्फ से घिरे खिल उठते हैं, नाना प्रकार की पीतसेवतियां अपने-अपने रंग लिये एक के बाद एक खिलती चली जाती हैं, कहीं होते हैं लाल-गुलाबी फूल, कहीं नीले-बैंगनी, कहीं चटक सफेद, कहीं स्वर्णिम-पीले। हिमाच्छादित घास भूमियों में बर्फ से घिरे हरे-हरे भू-खण्डों पर फूलों की रंग -बिरंगी वाटिकाएं, पीतसेवतियों की हसीन सुंदर पुष्प मालाएं। प्रकृति के रंग अनोखे, आठ हजार, दस हजार, बारह हज़ार फीट की ऊंचाइयां, उस पर बसंत ऋतु का आगमन, बर्फ में फूल, फूलों में रंग, रंगों में चमक, सुंदरता अनूठी इस पग, उस पग, जंगली फूल महके, मदहोश हुए खग।

कुछ नीचे चलें, देवदार के जंगलों में तेलम की झाड़ियां, पत्ते अभी नहीं निकले परंतु फूलों की महक आगे, गुलाबी फूलों के गुच्छे महक से भरे, वातावरण में अनोखी चहल-पहल करें। भद्रवाही लोग कहें त्योंद, डोगरे कहें तेलड़ी, गोजर कहें गुच्छ, बसंत ऋतु में इस झाड़ी पर अलग खुमार, फूल-ही-फूल टहनी पर, फूलों के पीछे-पीछे पत्तों की हरियाली घूंघट

सरकाती। इसी के संग सामान्य सुफल पुष्प भरी टहनियां लिये, बर्फ से घिरे वातावरण में दुधिया सफेद फूल अपने अलग निखार में खिले हुए। भद्रवाही लोग कहें जिन्तोई, पहाड़ी लोग कहें बेखल, डोगरे कहें रुआड़ी।

बसंत ऋतु आगे सरकती हुई नये-नये फूल बांटने लगती है। महीनों बेरंग रहने के बाद, जंगली पेड़-पौधों पर फिर से रंगों की सजावट हो जाती है। दस हज़ार फीट की ऊँचाई पर अभी बर्फ-ही-बर्फ होती है, इसी वातावरण में चिमुल (सफेद बुरांस) फूलों से लद जाता है चाहे शाखाओं पर अभी बर्फ जमी हो, पैरों में बर्फ का ही आसन हो। फूल हल्की नीलिमा लिये सफेद होते हैं, इसलिए सफेद बुरांस भी कहा जाता है। कश्मीर में सिमथन टाप, कल्होई पहाड़ और नौगाम में तूतमार गली में इसे देखा जा सकता है। गुरेज-तलेल में भी हो सकता है परंतु अभी तक नज़र में नहीं आया। सफेद बुरांस ऊंचाइयों पर खिलता है तो लाल बुरांस मध्यम ऊंचाइयों पर देवदार व बांस के जंगलों में। सफेद बुरांस बर्फ में ही खिल जाता है, लाल बुरांस बर्फ पिघलने के उपरांत खिलता है। लाल बुरांस को डोगरे चिङ, कहते हैं तो राजौरी के लोग हड़दुल्ल कहते हैं। पंचैरी में मधाहल नाम मिला है तो भद्रवाह में चेचेहूं। अंग्रेज़ी में रोज बे लारेज कहलाने वाले इस लाल बुरांस को नेपाल में राष्ट्रीय फूल का सम्मान मिला है। इसके लाल फूलों की शोभा कमाल की होती है, एक गोल गुच्छे में 15 से 18 कलशनुमा फूल शोभा को चार चाँद लगाते हैं। इस फूल का शरबत स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है। फूलों से होली का गुलाल भी निकाला जाता है। होली के मौसम में बुरांस के फूलों का मौसम जो हुआ। जब बुरांस के फूल खिले होते हैं तो जंगल का जंगल लाल रंग में रंग जाता है, पक्षी परिंदे उड़-उड़ आते हैं खुशी से चहचहाते हैं। बारह हज़ार के आस-पास छोटा सिमरू या तलीशा का भी जामुनी फूल ख़िलाने लगता है बसंत का आगमन देख और भूल जाता है बर्फ की ठिठुरन। इसे अंग्रज़ी में स्केली रहोडोडेंड्रान कहा जाता है।

चीड़ के जंगलों में अलग किस्म के फूल खिलने लगते हैं। चरागाहों में वाईल्ड ट्यूलिप के क्या कहने दूर-दूर तक एकल-एकल फूल स्वाभिमान लिये शोभा बिखेरते हुए एकाएक फूले हुए अपने अलग अंदाज में बसंत ऋतु के आगमन में प्रफुल्लित। डोगरों के मगूहने, मग्गे, केआलूं भद्रवादियों के भूंडे, कश्मीरियों के न्योतर, लद्दाखियों के कपिचांग, हिंदी में नलिनी कहलाए जाते हैं। कश्मीर का ट्यूलिप गार्डन खूबसूरती की अलग मिसाल कायम करता है तो जंगलों के जंगली ट्यूलिप भी कम हसीन नहीं। जम्मू का ट्यूलिप, ट्यूलिप स्टीलाटा, हल्की लालिमा लिये सफेद रहता है, भद्रवाह का ट्यूलिप, ट्यूलिप क्राइजैन्था, गहरी लालिमा लिये पीला होता है।

बसंत ऋतु में सेमल भी बेरंग नहीं रहता, गहरे लाल रंग के मोटे-मोटे फूल कौओं, किलहटों के लिंये आहार का उपहार लिये फूले रहते हैं, आहार के चलते फूलों का परागण कर जायेंगे कौए, किलहंटे तभी तो फूलों से फल विकसित होंगे। नयी पौध के लिये नये बीज स्फुटित होंगे। सेमल के फूलों के मौसम में कचनार के फूल भी खिल उठते हैं। कचनार की कच्ची कलियां देखते-ही-देखते जामुनी-गुलाबी लालिमा लिये फूल बन इठलाने लगती हैं, पत्ते अभी पूर्ण रूप से विकसित भी नहीं हुए पर पेड़ो के पेड़ फूलों से लद जाते हैं।

कचनार को कई नाम मिले हुए हैं, अंग्रेज़ी में मौंटेन इबोनी, पर्पल आर्किड ट्री, कैमल फुट ट्री आदि, हिंदी में कचनार, करियाल, डोगरी में कतरैड़, करैड़ और कलेआड़। जम्मू के जंगलों की लता कचनार भी इसी की बहन ही है, डोगरे कहते हैं मलूंगड़ बलूंगड़, टौंहर, मलोआड़ पत्ते शादी-विवाह में पत्तल-दोने के रूप में न जाने कब से प्रचलित हैं डोगरा समाज में, अभी चाहे यह चलन दिन-प्रतिदिन कम ही होता जा रहा है। इस काष्ठकीय लता के फूल हल्के पीले होते हैं। लचकदार काण्ड के झूले बनाकर गांव के बच्चे इसी के हो जाते हैं खासकर गर्मी की दोपहरी में जब इसकी छाया अति सुखद और मनप्रिय लगती है। पतझर के मौसम में दूसरे प्रकार का गुलाबी कचनार खिलता है पिंक बाहूईनिया।

बसंत ऋतु धीरे-धीरे गरमाने लगती है, दिन को धूप चिलचिलाने लगती है, सूक्ष्म फूल लुप्त होने लगते हैं, नहीं दिखते फिर हिरणतूती के फूल, नलिनी के पुष्प, तेलम की महक, पीतसेवती की शोभा। मौसम गर्मी का कुलांचें भरने लगता है तो जम्मू के गर्म भूखण्ड पर अमलतास के सुनहरे पीले फूल और पलाश के लाल-पीले फूल एकाएक खिलखिला कर खिल उठते हैं, सुंदरता देखते ही बनती है। अमलतास की शाखाओं पर पीली पुष्प मालाएं लटक-लटक कर अपना अभिवादन प्रकट करती प्रतीत होती हैं। तो पलाश की शाखाओं पर चटक लाल-पीले फूलों का तांता-सा लग जाता है जिधर देखो उधर फूल-ही-फूल, पत्तों का नहीं अभी आगमन कहीं। चिलचिलाती धूप में धातकी की शोभा भी कम नहीं होती, शाख-शाख पर चटक लाल पुष्प, पुष्प नली में मीठा मकरंद, चट्टानों में खूब खिली, धूप चिलचिलाती मिली, गर्मी के मौसम की शोभा, अमलतास, पलाश और धातकी। चीड़-देवदार जंगलों में अभी गर्मी उतनी नहीं। कोसी धूप के दुलार से कितने नये फूल खिलने को आतुर हैं। बासंती पीले फूल लिये खड़ी है तो छमकथ भी पीछे नहीं। हाथों में लिये खड़ा है गुलाबी-बैंगनी पुष्प शाख-शाख पर। पहाड़ों की गुलाब लता, कस्तूरी पाटल, चारों ओर मदहोशी की महक लुटाती, कांटों की चुभन भुलाती, कितने भंवरों को पास बुलाती, सब की हो जाती।

आठ-दस हज़ार से ऊंचे पहाड़ों पर तो अभी बसंत ही विराजमान है, पहाड़ी मैदानों में फूल-ही-फूल, वासमूल, सोसन के नीले-नीले फूल, अनिमोन के पीले और दुधिया सफेद फूल, कषायमूल के गुलाबी-बैंगनी फूल, भद्रशाक के पीले स्वर्णिम फूल, अतिविषा के फूल अभी कलियों में, मौंटेन कैंडल के फूल फाक्सटेल की तरह शाख में, विडाल पर्नास में भी फूलों के आने का इन्तज़ार।

भारत में पावस ऋतु क्या आती है आसमान पर काले-काले बादलों का डेरा ही जम जाता है, रात-दिन वर्षा, फुहार, छींटे धूप की आँख-मिचौली और बनता-बिगड़ता इन्द्रधनुष। आसमान में इन्द्रधनुष के रंग बिखरे लगते है। तो धरती में फूलों के रंग निखरे-निखरे लगते हैं।

बरसात के मौसम में फूलों का अलग सौंदर्य निखर आता है। झाड़ी-झाड़ी में अग्निशिखा का आलिंगन, मदहोश मुद्रा में लाल-पीले फूलों का उपहार, कभी करौंधे (गरने) पर, कभी बेशर्म आक (बलैती अक्क) पर, कभी अलियार (सैंथा) की ओट में, कभी अड़ूसा

के आगोश में। फूल उल्टा टंगा हुआ, इसीलिये उल्ट चंडाल का नामकरण भी प्राप्त है, आग के शोले-सी पांखुरियां, इसलिये अग्निशिखा और अग्निमुखी नाम भी मिले हुए हैं। डोगरी में इस फूल को गलोहटमामा, गलहोड़, कुक्कड़सिरा नाम से पुकारा जाता है। अंग्रेजी नाम ग्लोरि लिली भी खूब है। इस पुष्प की दूसरी प्रजाती फलेम लिली को जिमबावे के राष्ट्रीय फूल का गौरव प्राप्त है। ग्लोरि लिली को हिंदी में कलिहारी भी कहा जाता है। इस शोभायमान वन्य वनस्पति का कंद औषधियों में प्रयोग किया जाता है। जम्मू प्रांत के कठुआ जम्मू व उधमपुर जिलों में बरसात के मौसम में इसे प्राय देखना दुर्लभ नहीं।

बरसात के मौसम में मांडा के जंगल में एक अनोखी वृक्ष प्रजाति पारिजात या हार-श्रृंगार संध्या के समय महक बिखेरती है। संध्या के समय लाल पुष्प नलिका वाले सफेद फूल खिलने शुरू हो जाते हैं और आसपास का वातावरण महक से भर जाता है। सुबह होते ही हार-श्रृंगार के फूल नीचे धरा पर गिर जाते हैं। एकाएक मानो किसी शोक में डूबे हुए हों तभी तो नाम मिला है ट्री आफ सैडनेस। इस पेड़ को डोगरी में कूरी और करून नाम से जाना जाता है। बरसात में छोटे-छोटे कई फूल धरा पर शोभा बिखेरने चले आते हैं। कर्णस्फोटा की लताओं पर फूल आते ही फूले हुए गुब्बारे से फल विकसित होने लगते हैं, कषायमूल के फूल-ही-फूल खिल जाते हैं, तायरिणी, कुलिनी के फूल मक्की की फसल को निहारते नज़र आने लगते हैं। गंगा तुलसी नीले फूलों का सौंदर्य धारण कर लेती है तो बज्रदंती की झाड़ियों पर गुलाबी फूल अंगड़ाई लेते हैं। सीलन भरी चट्टानों पर शोभापर्ण (बिगोनिया पिक्य) फूलों के मुकुट लगा लेता है तो मैदानों में द्रोणपुष्पी या धुर्पी सिर पर पुष्प गठरी उठा-उठा कर चहकने लगती है। शियालकांटा झाड़ी के अरमान देखो, कांटें से भरी ज़िंदगी में गुलाबी फूलों की कोमलता जब हो बादल, बरसात, कहां याद रहते हैं कांटें आघात, फूलों के रूप में निखरते हैं अरमान, लाजवन्ती लज्जा की मारी, फूलों में आपस की पहचान, दोनों की जाति एक, फूल एक समान।

कश्मीर धरती का स्वर्ग कहलाता है जुलाई-अगस्त में फूल निखार लहलहाता है जिधर देखो उधर कल-कल करते झरने, नदियां-नाले और हर ओर फूलों सजी हरियाली, प्रकृति ने सुंदरता दिल खोल उडेली, कश्मीर की सुंदरता पुरानी सहेली। कुक्करनाग हो या वैरिनाग, अच्छावल हो या आहरवल, गुलमर्ग हो या सोनामर्ग, हर तरफ झरने नीर और फूल-ही-फूल। हिमालयन बालसम जब खिलता है तब वातावरण गुलाबी हो जाता है, नदी-नाले का नीर फूलों से ढक जाता है, फूलों भरी शाखाओं से आलिंगन पाने के लिए उछल-उछल कर मचल जाता है। कश्मीरी में इसे त्रूल कहा जाता है और भद्रवाही में अल्लू। जम्मू के सन्नासर में देखो या बनी सरथलो में तिलपुष्पी के फूलों की आकर्षित शोभा हमें अपने रंग में रंगने का प्रयास करती है। इस फूल को विचिज बैल्लज या फाक्स ग्लोब नाम से अंग्रेज़ पुकारते हैं। इस फूल को गुलमर्ग के स्थान पर भी देखा जाता है। इस जगह इस फूल की दो और प्रजातियां देखने की मिलती हैं, एक पीले फूलों वाली डिजिटैलिस ग्रैंडीफ्लोरा और दूसरी छोटे सफेद-भूरे फूलों वाली डिजिटैलिस लनेटा। डिजिटैलिस का पर्पूरिया को औषधी में भी प्रयोग किया जाता है।

डोगरी में रतनजोत नाम से जाने जाने वाले तीन-चार पौधे हैं-एक रतनजोत जेट्रोफा करकास जिसे बायोफ्यूल के लिये अभी प्रयोग किया जाने लगा है पर पुराने समय से इसका तेल राम की जोत जलाने में प्रयोग किया जाता रहा है, इसके फूल हरे-पीले सही पर इसकी कुछ प्रजातियां शोभायमान भी हैं जैसे जेट्रोफा रोजिया लाल रंग रंगी। दूसरी रतनजोत-एक प्रकार की पहाड़ी चाय फूल लाल जिसे गोजर गुलेलाला भी कहते हैं और कुछ डोगरे त्रोहड़ के नाम से जानते हैं। पहाड़ी चरागाहों में इसके लाल फूलों की भरमार बरसात की फुहारों में ही नज़र आती है। यह वनस्पति पोटेंटिला नेपालैंसिज है। तीसरी वनस्पति जिसे डोगरे पहाड़ों में रतनजोत कहकर पुकारते है वह है कश्मीरियों की गाहोजवान और वनस्पति शास्त्रियों की आर्निबिया बैंथेमाई। साधू तपस्वी के भेष में मूक खड़ी गहरे लाल-बैंगनी फूल छुपाये, इस वनस्पति का क्या कहना, इसके पास पहुंचने के लिये पहाड़ों को सर करना पड़ता है, बारह हजार फीट तक भी जाना पड़ सकता है तभी दर्शन हो सकते हैं अथवा नहीं। एक और वनस्पति 'रतनजोत' नाम से जानी जाती है और वह है आनोस्मा ब्रैक्टिएटम, सिर पर गहरे बैंगनी फूलों का गुच्छा लिये, रूक्ष पत्तों का लिबास ओढ़े पहाड़ों में इतनी बिरल कि ढूंढ़े न मिले। पांचवी किस्म की रतनजोत है-अनिमोन आबटयूसीलोबा जिसके फूल सफेद, हल्के नीले या पीले पहाड़ी चरागाहों में बिखरे रहते हैं, चलते-चलते यात्री के पांव रुक जायें कि पैर फूलों पर न पड़ जायें।

अतिविषा के फूल भी मन लुभावने होते हैं खासकर जैकमांट मंकज हूड के। सुंदर फूलों में नाना प्रकार के कोलम्बाईन भी सम्मिलित हैं। सुदमहादेव की ब्लू कोलम्बाईन डोगरों की भाषा में 'सीता दी पनी' कहलायी जाती है, नीली पांखुरी मानो औरतों की प्राचीन 'पनी' नामक जूती हो और वह भी सीता माता जी के चरणों की पावन सम्मान योग्य।

सफेद व हल्के पीले रंग की दूसरी कोलाम्बाईन अमरनाथ गुफा के पहाड़ी रास्ते में दिखने वाली शोभायमान वनस्पति है-एक्यूलीजिया फ्रेगरैन्स। अमरनाथ गुफा के निकट महागुनस संगम में एक और छोटी व अति सुंदर कोलम्बाईन वनस्पति मिलती है-एक्यूलीजिया निवेलिस-फूल गहरे लाल बैंगनी। कश्मीर में मूरक्राफ्ट कोलम्बाईन भी मिलती है।

कश्मीर में घंटीफूलों की शोभा भी देखते ही बनती है चाहे वो चट्टानों को चाटने वाला कश्मीरी कैम्पेन्यूला हो या जंगलों में नीला निखार बिखेरने वाला ग्रेट बैलफ्लावर, कैम्पेन्यूला लैटिफोलिया। इस सुंदरता से प्रभावित होकर ही अंग्रेज़ कश्मीर का ग्रेट वैलफ्लावर अपने योरुप ले गये थे और आज यह फूल उनके बागों, पुष्प वाटिकाओं की शोभा बढ़ा रहा है। अति छोटा परंतु अति लुभावना एक घंटीफूल है कैम्पेन्यूला एरिस्टाटा, गहरे नीले फूल औंधे मुंह लटके हुए, एक शाख पर एक नीले फूलों में अति शोभायमान अगर कोई फूल और है तो वो है हिमालयन ब्लू पाप्पी, मिकोनापसिस एक्यूलीएटा, पहाड़ी चट्टानों में, पथरीले स्थानों में, नीलगगन रंग लिये, चार-चार पांखुरियों वाले उठाये पीले कांटों भरा मनोरम पुष्प। कश्मीर में यह फूल सिमथन पास, मरगन टाप, राजधान टाप, गंगवल और कल्होई पहाड़ पर मिलता

है। इसे हिंदी में स्वर्णकांटा और गोजरी में गुलनीलमो कहते हैं। इसकी दूसरी प्रजाति मिकोनापसिस लैटीफोलिया केवल कश्मीर के भौगोलिक क्षेत्र के अंदर सीमित है।

पहाड़ों के फूलों में नीलकंठ पुष्प भी अपनी सुंदरता के लिये प्रसिद्ध हैं। चीड़ के जंगलों में हिमालयन त्रायमाण सुंदर लगता है तो दस हजार फीट की ऊँचाई वाले पर्वत शिखरों पर कश्मीरी नीलकंठ भी कम सुंदर नहीं होता। मूरक्राफ्ट नीलकंठ यहां हल्के नीले रंग का होता है वहां तियानशेयान नीलकंठ गहरे नीले रंग के पुष्प विकसित करता है। कषायमूल के फूलों में यहां गुलाबी रंग प्रधान होता है वहां पुष्करमूल के फूलों में पीला रंग अपनी विशेषता लिये रहता है। कषायमूल को अंग्रेज़ी में क्रेननबिल फ्लावर कहा जाता है और पुष्करमूल को हार्स हील फलावर। लताओं में प्रभात शोभा अपने अनूठे सौंदर्य के कारण सब के हृदय में जगह बना लेती है। गुलाबी, जामुनी या नीले जामुनी पुष्प लिये यह लता प्रभात की बेला में सौंदर्य से भरपूर होती है तभी तो इंगलिश में इसे मार्निंग ग्लोरी कहते हैं। डोगरी में खड़पौए, मैहलां, जोजनू नाम से यह लता जानी जाती है।

कश्मीर की हसीन वादियों में कश्मीर मैलो नाम का फ्लावर भी कम हसीन नहीं। डाचीगाम राष्ट्रीय पार्क हो या नारानाग की बस्ती, गुरेज तिलेल की किशनगंगा घाटी हो या डकसम में जंगल का किनारा, सब स्थानों पर इसकी खूबसूरती का डंका न्यारा, कुल भिंडी का और रंग गुलाबी प्यारा। इसको वानस्पतिक नाम मिला हुआ-लेवेटरा कश्मीरियाना। जम्मू कश्मीर की वन्य जीव अधिनियम की छठी सूची में इसको शामिल कर रखा है। इसको रेशा खतमी और सजपोश नाम से भी जाना जाता है।

पहाड़ी जंगलों में, विषकंडार नामक पुष्प भी हल्के गुलाबी फूलों के चक्रित गुच्छे सजाकर खूबसूरती में अपना योगदान देता है। इसको 'हिमालयन वर्ल फ्लावर' कहा जाता है। कश्मीर में बंगस वैली, मच्छल के जंगलों में इसे देखना दुर्लभ नहीं। लद्दाख और पाडर में भी इसे देखा जा सकता है।

विडाल पर्णास वनस्पतियों में पुष्प रंग में बहुत अधिक भिन्नता है, कहीं फूल गहरे नीले तो कहीं हल्के पीले, कही दुधिया सफेद तो कहीं लाल-बैंगनी। इंगलिश में विडालपर्णास को कैट मिंट (बिल्ली का पोदीना) कहा जाता है। निपेटा विज्ञानक जाति है। इसकी एक खास प्रजाति है निपेटा रैफनोराहीजा जिसका कंद मूली की तरह मोटा और खाने वाला होता है। इसकी एक प्रजाति निपेटा फ्लाकोसा लद्दाख के ठंडे मरुस्थल में लाल-नीली रंगत उडेलती है, पत्तों से नीम्बू गंध प्राप्त होती है। निपेटा लीवीगांटा बी सुंदर सिलोने फूल विकसित करता है।

हिमाच्छादित गोचरियों में नाना प्रकार की यूकापर्ण वनस्पतियां (लाऊसवर्ट, पैडिकुलैरिस) देखने को मिलती हैं। गुलमर्ग के मैदान में लालिमा बिखेरने वाली पैडिकुलैरिस हो या काओवल राजधान पर्वत शिखरों पर स्वर्णिम आभा बिखेरने वाली पैडिकुलैरिस बाईकार्नूटा, यूकापर्ण के फूलों को क्या कहना, एकाएक हजारों फूलों का मनमोहित प्रदर्शन देखने वाला

देखता रह जाये, इतने फूल, इतनी हसरत, वादियों के विरानों में रंग भरी उलफत। गुलाबी रंग की सुंदरता देखनी हो तो पैडिकुलैरिस पाइरेमिडेटा को देखो अशाखित स्वावलम्बी देह पर गुलाबी फूलों की मंजरी अति सुंदर, फुहारों में न्हाई हुई हवा से मोहब्बत रचाई हुई। लद्दाख में नूबरा घाटी की लांग फ्लावरड लाऊसवर्ट गहरे पीले रंग रंगी अति सिलोनी लगती है घोड़े भी पांव रखते संभल-संभल चलते हैं कहीं पांव तले कोई फूल न आ जाये। लद्दाख के खर्दुंगला में नार्थ पुलू और साऊथ पुलू दोनों जगह फूलों का विचित्र मेला-सा देखने को मिलता है। चट्टानों पर फूल, मैदानों में फूल, कहीं गुलाबी वाल्डहीमिया कहीं पीला क्रीमेंथोडियम, कहीं जामुनी प्रिमुला कहीं गुलाबी जिरेनियम, कहीं पतला मोटा रहोड्डियोला, कहीं कंटीला एकैंथोलाईमान, कहीं पीला कोरीडैलिस और फाइसोकलेना, कहीं नीला डेलफीनियम और एकोनाईटम। पहाड़ी स्थानों पर वीरापर्ण वनस्पतियां भी सुंदरता के लिये विख्यात हैं, चौड़े पत्ते वाली वीरापर्ण (ऐपिलोबियम लैटीफोलियम) और संकीर्णपत्र वीरापर्ण (ऐपिलोबियम अंगस्टिफोलियम) कम खूबसूरत नहीं, चार-चार पांखुरियों वाले गुलाबी फूलों की शोभा प्रकृति को और सुंदर बनाती है। छिन्नपर्णी नामक वनस्पति भी अपने पीले फूलों के कारण खूबसूरत लगती है, इसे अंग्रेजी में टैन्जी कहा जाता है। कश्मीर और लद्दाख क्षेत्रों के पथरीले स्थानों में इसी की सुंदरता नज़र आती है। साथ-ही-साथ ऐसे पथरीले स्थानों में तूलकोश पुष्पों की नीली सुंदरता भी मनमोह लेती है। तूलकोश पेरोस्किया का हिंदी नाम है। लद्दाखी लोग कहते हैं सेमेलो या इस्केलिंग। अंग्रेज़ी में रशियन सेज (रूसी तुलसीबंधु) कहा जाता है। लद्दाख के ठंडे मरुस्थल में इसके गहरे नीले फूलों की शोभा का क्या कहना।

गुलमर्ग हो या गुरेज, जैकाव'ज लैडर वनस्पति हल्के नीले फूलों से लद-लदकर मन मोहित करती जाती है। पहाड़ी शंकुधारी वनों में इठलाती गाती हवा इसके फूलों संग अठखेलियां-सी करती जाती है। इसे अंग्रेज़ी में फाल्स वलेरियन भी कहा जाता है, वानस्पतिक नाम है पोलमोनियम सेरूलियम।

काकोली के फूल भूरे बैंगनी और शीर्ष से लटके हुए अपनी अलग मुद्रा में रहते हैं। इसे कश्मीरी छीथकार कहते हैं। विज्ञान की भाषा में फ्रिटिलेरिया कहा जाता हैं। दूसरी काकोली रोस्कोइया ऐल्पाईना है जो गहरे लाल-जामुनी फूल विकसित करके पहाड़ी मैदानों में शोभा बढ़ाती रहती है।

फूल खिलते हैं, खिलकर लुप्त हो जाते हैं फिर से खिलने के लिये, फिर से वीरानियों में रंग घोलने के लिये, मौसम के पुनः लौट आने पर, लौट आते हैं अपने-अपने रंग लेकर, अपने-अपने पैगाम लेकर, सदियों से खिलते रहें हैं, सजाते रहें हैं पहाड़, मैदान, वीराने जंगल बसंत में, बरसात में, नहीं घटा प्यार प्रकृति से, नहीं बदली राह रंग आकृति से, खिलेंगे फूल मुड़-मुड़ देखने जाना जंगलों में उड़-उड़, फूल सिखायेंगे सीख पग-पग, निस्वार्थ भावना लेकर चलो पल-पल, खिलो, हंसो, हंसाओ और विदा हो जाओ खिलकर।

ooo

पोटली वाला बाबा

❑ रामकुमार आत्रेय

अपने कंधे पर टंगी पोटली को
अब उतार कर नीचे रख दो बाबा
यह पोटली फूल कर अब
हो गई भारी-भरकम गठरी
कदम-कदम पर आपने इसमें
कुछ जोड़ा ही है
घटाया नहीं कभी
इसके बोझ से अब तो
कदम भी लड़खड़ाने लगे हैं आपके

जेब ही खाली नहीं रहती
आपका पेट भी खाली रहता है अक्सर
जिसकी बजह से हो गई है देह कमज़ोर आपकी
अभी कुछ दिन पहले परेशान होकर पेट से
आप चले गए थे बाज़ार
अपनी पोटली में से
कुछ कीमती सामान बेचने के लिए
लेकिन दुकानदार ने पोटली का सामान देखते ही
कहा था नाक-भौं सिकोड़ कर
कि इस सड़ियल सामान को उठा कर ले जाओ बाबा
बाजार में अब इसकी कोई पूछ नहीं है
अच्छा होगा
और कहीं जाकर कूड़े के ढेर पर फेंक दो इसे
बेकार में बोझ भरने से क्या फायदा
तब तुम अपमानित से लौट आए थे
हताश होकर
पर इस पोटली से मुक्त नहीं हो पाए थे

मैं ऐसा कहने की गलती तो नहीं करूंगा बाबा
कि इसे कूड़े के ढ़ेर पर फेंक आओ कहीं
परन्तु इतना अनुरोध अवश्य करूंगा

कि इस पोटली को खोल दो बाबा
क्यों कि कोई भी चीज बन्ध जाने पर
सड़ने लगती है
और यही बात तुम्हारी पोटली में निहित
वस्तुओं पर लागू होती है

यदि आप इन चीजों को इसी रूप में
अपने बेटों-पोतों या सगे-सम्बधियों को
देना चाहोगे
तो वे भी कर देगें इन्कार इन्हें लेने से

मुझे पता है इस गठरी में
छिपा कर रखे हुए हैं आप
बहुमूल्य हीरे-जवाहरात की तरह
बड़ी-बड़ी सच्चाइयां
बोझिल नैतिकताएं
मोटी-मोटी ईमानदारियां

इसलिए इस पोटली को खोल दो बाबा
और सच्चाइयों, ईमानदारियों, नैतिकताओं को
जमाने की नई धूप और हवा लगने दो
ताकि इनकी सड़न मिट जाए
और ये एक नई सुगन्ध और नई चमक के साथ
बहुमूल्य हीरे-जवाहरात की तरह साथ दे सकें आपका

वैसे अभी आप
बूढ़े होकर बाबा कहलवाने के अधिकारी नहीं बने हैं
क्योंकि आप इस पोटली को उठाए घूमा करते हैं
इसी लिए लोगों ने शुरू कर दिया था
आपको बाबा कहना

ऐसी पोटली लिये घूमने वाले बच्चों को भी
लोग बाबा ही कहा करते हैं अक्सर
भूखे-नंगों की कब्रों पर
कभी ताजमहल नहीं बनते बाबा!

ooo

संपर्क : म० न०-864,ए/12, आजाद नगर, कुरुक्षेत्र-136119

व्यंग्य काव्य

आज़ाद कबाड़ी

❑ डा० मज़हर ख़ान

सुनो, साहित्यकार बनना चाहोगे।
क्यों ? तुम में क्या कमी है ?
बहुत धन पाओगे।
रहने दो-थोड़े में जी लेंगे।
बहुत नाम कमाओगे।
अपने नाम में क्या कमी है ?
अखबारों में छप जाओगे।
रद्दी की कहाँ क्या कमी है ?
फिर क्या बनना चाहोगे ?
'एक कबाड़ी।'
'कबाड़ी!'
'हाँ। एक आज़ाद कबाड़ी।'
'लेकिन क्यों ?'
''मुफ्त में, साहित्य पढ़ पायेंगे
जो बचे, बेच खायेंगे
और-
अगर कोई रचना
मन को भा गई ;
अपने नाम से
छप जाएगी।
और मौका पाते ही
इनाम की माँग करेंगे;
फिर-
एक-एक कर
झोली में अपने
सब सम्मान होंगे;
साहित्यकारों में
सबसे ऊँचा
नाम होगा।''

मोहल्ला, साज़गरीपोश (हवल), श्रीनगर-190011 (कश्मीर)

अनकहा दर्द

❑ डा० दिनेश चमोला 'शैलेश'

बरसात की
पहली फुहार हो
सर्दी की कड़कती सुबह
या फिर
तपते ग्रीष्म के साथ ही
याद आती है मुझे

रामू लुहार की
घासफूस की झोंपड़ी
उसके बाहर
औजारों से भरी
लौह भट्ठी
भट्ठी को तेज
करने की चाह में
धुएं से
झड़ी-सी बरसती
उसकी आंखें

भूख से बिलखते,
मक्खियों से
भिनभिनाते उसके
नंग-धड़ंग बच्चों का टोला

पानी चूते
उपलों के बीच से
झांकता उसकी आजीविका का स्वप्न

और
टप-टप टपकती
झोंपड़ी के बीच
बच्चों को खिलाने की
चिंता में डूबी
मुंह में पल्लु दबाए
रामू लुहार की पत्नी

आखिर क्यों
आती है यह मुंहफिरी बरसात।
या तन-मन जलाती भीषण गर्मी।
बेमौसम में
हमारी खुशियां छीनने ?

गर न आती यह
तो कितने औजार
और पैने हो जाते
कितने बिक भी जाते
साथ ही साथ पैने होते
रामू की पत्नी के सपने भी
इनसे बन जाते
दो-चार बच्चों के कपड़े
और भी बहुत कुछ

अपने फटे-पुराने दिनों
व कपड़ों को
सी लेने के लिए लाती वह
कोई प्रेरणा की सुई
व आशा का धागा

बार-बार
बरसात की हर फुहार पर
सर्दी की हर सुबह,..... और
गर्मी की हर तपती दुपहरी में
अपलक जाने क्यों याद आता है मुझे

रामू लुहार का
झुर्रीभरा हंसमुख चेहरा
हर फुहार से जुड़ा
उसका कतरा-कतरा जीवन.....
उसके नंगे बच्चों के
सतरंगे सपने....
व्याकुल पत्नी का
अनकहा दर्द

ooo

संपादक 'विकल्प', भारतीय पेट्रोलियम संस्थान,
देहरादून-248005

रास्तों से

❑ गंगा प्रसाद विमल

रास्तों से होकर
पीढ़ियां गई
रास्ते वहीं है कुछ-कुछ
बदलने के क्रम
नये-नये बने
पगडन्डियां
बन गई राजमार्ग
और राजमार्ग
काल मार्ग
कुछ ऐसे भी रास्ते थे वहीं
जो दिखाई नहीं देते
होते रास्ते ही हैं
उनसे चलती रहती है दुनिया
अपने-अपने मार्गों पर
रास्तों से होकर
गुज़र गये हम
गुजर गये पुरखे
कल भविष्य भी गुज़रेगा
दृश्य-अदृश्य मार्गों से
रास्ते और चलना
यही है भविष्य
जब तक हैं तब तक हम
रास्तों से चलते ही रहेंगे
चलने के लिए
बनते ही रहेंगे रास्ते
मिटते हुए रास्तों के
पड़ाव स्मृतियां होंगी वहां
वे हमेशा-हमेशा रहेंगे
गो कि वे होंगे नहीं
असल में
गो कि बदल गये पुराने रास्ते
वैसे नहीं है जैसे थे वे
जैसे भी थे वे
थे रास्ते
जिन पर
चलते थे हम

नये ढंग से बदल
नये लोग चलेंगे
और चलते ही रहेंगे सदा
चरैवेति चरैवेति ....

साहित्यकारों में
सबसे ऊँचा
नाम होगा।''

०००

112, साउथ पार्क अपार्टमेंट्स कालका जी नई दिल्ली-110019

ढहता हुआ

❑ प्रभात

निर्जन का धूल ढका. बबूल मेरा चित्त है
मेरा शांत चित्त
निर्जन का कुआं
जिसके तल में पानी पर टहनियां जाले और सूखे फूल हैं
मेरा मन है
मेरा अकेला मन
दूर-दूर तक खेतों में कटे पड़े गेहूं के पुआल
मेरी आंखों की रोशनी है जो चली गई है
हाहाकार की तरह फैला तपता आकाश
मेरी व्यथा है.
मेरे हृदय में खदबदाती व्यथा
यह मेरा शरीर मेरे होने की आखिरी निशानी
मेरे ढहे घर की तरह ढहता हुआ
ढहे घर की दीवार को कितने दिन थामे रह सकूंगा
गांव छूटने के बाद
जिन्दगी को कितने दिन थामे रह सकूंगा
जिन्दगी से लगाव छूटने के बाद

०००

31 बी, पुरुषार्थ नगर बी, जगतपुरा, जयपुर 302025 राजस्थान।

यह विडंबनाएं

❑ डॉ० पी. के. कौल

कोई विडम्बना नहीं इस में
कि
अफवाएं!
दुश्प्रचार!
धीरे से कान में डाली गई फुसफुसी!
या
पीठ पीछे की गई बुराई!
या
बार-बार का आरोपित झूठ
धीरे-धीरे सत्य लगने लगता है
या फिर सत्य भी मान लिया जाता है
पर
शायद, यह भी एक
सामयिक सत्य हो
कि आज का साहित्यकार
द्वंद्ववाद की क्रूर प्रवृति से
ग्रस्त हो
स्वयं भी
साहित्य जगत की ही नहीं
समाज की भी
एक बड़ी विडम्बना
बन रहा है।

•

निजि सफलता के लिए
दूसरों पर पहले
तोहमत लगाओ
उसे फिर दोहराओ
दोहराते जाओ
तो वह
सौ बार का सत्य
बन जाती है।

पर न जाने क्यों
लोकविश्वास का जादू
आदम सोच का रंग
और लोकाचार की कर्मन्यता
सूर्य के ग्रहण ग्रस्त हो जाने पर भी
उसे काला या कलंकित
क्यों नहीं बनाती
हर समय में
सूर्य कलंकित होता रहा है
ग्रहण ग्रस्त होता रहा है
होता रहेगा।

हर समय में
चन्द्र मां कलंकित होती रही
झूठी या सच्ची
ग्रहन ग्रस्त भी हुई
शरमाई-और
छिपा-छिपी अपनाई
फिर और भी आभायुक्त
हो चमकती आई।
सीता, द्रौपदी या कुन्ती
की तरह।
प्रकृति में कितनी विडम्बनाएं हैं।

पर मेरा सत्य तो यही है
कि
सूर्य का प्रकाश पुंज
एक निरन्तर का

अटल सत्य है।
ग्रहण ग्रस्त
चन्द्रमां का कलंक भी
एक आरोपित सत्य है।
कुछ समय का यह कलंक
प्रकाश पुंजों पर ही सम्भव है
टिमटिमाते तारों पर नहीं।
अब तो विकृत वायुमंडल में
नन्हे तारों का टिमटिमाना भी
दिखता नहीं
यह बात दूसरी है कि
बरखा रुत में रिम-झिम के बाद
टिमटिमाते जुगनुओं की तरह
चमकते बुझते नन्हे तारे भी
दिखते जरूर हैं
पर अब आकर्षित नहीं करते।
कितनी विसंगतियां हैं धरती पर
कितनी विडम्बनाएं हैं
हमारे आदम लोकाचार में

०००

ग़ज़ल

❑ बलजीत सिंह रैना

खूबसूरत फूल था पर किस तरह कहता उसे ?
मुल्क सारा जू-ए-दहशत जब दिखे बहता उसे!
रात दिन बीजा जिसे सींचा जिसे, पाला जिसे,
देख मैं सकता नहीं अब बाढ़ में बहता उसे।
फ़न बिके, बिकता रहे, वो शख्स तो फ़नकार था,
बिक गए बेदाम हम तो, देखकर बिकता उसे!
दर्द कितना है छुपाए, खुशनुमा चेहरे सभी,
बे-मुरब्वत थी नज़र वो, किस तरह दिखता उसे!
खुद मछेरा और मछली आदमी इस दौर का,
तार रिश्ते की पकड़ इक जाल सा बुनता उसे।
था गुमां यूं मैं को मैं का, मैं किसी ने जब कहा,
एक सन्नाटे की सूरत, मैं रहा सुनता उसे।
गौर में लाता तसव्वुफ के मसायल भी मगर,
पेट में जो आग है, बोलो कहां रखता उसे?
थी जनूं की हद कि दीपक राग गा कुकनूस ने,
खुद जला डाला कफ़स यूं कब तलक सहता उसे?
देख कर अंजान 'रैना' दर्द क्यों इतना हुआ?
था नबर्दे-इश्क परवाना ही तो सहता उसे।

०००

एक और आदमी

❑ जसवीर त्यागी

जंगल के भीतर
उगता था एक और जंगल
भूख के भीतर
लगती थी एक और भूख
डर के भीतर
डंक मारता था एक और डर
नदी के भीतर
बहती थी एक और नदी
जैसे संसार के भीतर
बसता था एक और संसार
जैसे मेले के भीतर
सजता था एक और मेला
जैसे आवाज़ के भीतर
बुलाती थी एक और आवाज़
जैसे औरत के भीतर
छुपी होती थी एक और औरत
लेकिन ये सारी चीज़ें
उपस्थित होकर भी अदृश्य थीं
बार-बार देखने पर भी
दिखती न थीं
इन्हें देखने के लिए चाहिए थी
निगाहों के भीतर एक और निगाह
इन्हें समझने के लिए चाहिए था
आदमी के भीतर एक और आदमी

ooo

WZ—12A गाँव बुढ़ेला, विकास पुरी, दिल्ली-110018

सपनों का शून्य

❑ संजीव भसीन

जीवन से खेला है आदमी
बहुत अकेला है आदमी
उम्र-भर की भटकन
वर्षों की थकन
ज़िन्दगी का बोझ लादे
फिरते ये कन्धे
यहां से वहां तक
न जाने
कहां तक
धरती को नापते
ये बांधे कदम
साहिल से टकराकर लौटती
लहरों का रेला है आदमी
बहुत अकेला है आदमी
लड़खड़ाते कदम
उखड़ती सांसें
बिखरते सम्बन्ध
चुभती फासें
फूटते छालों से
रिसता लहू
तन भी घायल
मन भी घायल
कितने दुख झेला है आदमी
बहुत अकेला है आदमी
वर्षों से पलटे
सतरंगी सपने
चरागाहों को गए
जानवरों की तरह
सारा दिन विचरने के बाद
साँझ ढले लौट आते हैं

ऊँचे आकाश को
छूने निकले हाथ
पूरे फैलने के बाद भी
सिर्फ़ हवा में
लहरकर रह जाते हैं
रेतीले सपनों को
मुट्ठी में भरता
कितना अलबेला है आदमी
बहुत अकेला है आदमी
खोई हुई पहचान को ढूंढता
भीतर के सोए
इन्सान को ढूंढता
घुटन और छटपटाहट
सांसों पर हावी
अन्दर शोर बाहर सन्नाटा
कभी ज्वालामुखी
तो कभी समुद्र हो जाता
भीड़ में भी अकेला है आदमी
बहुत अकेला है आदमी

ooo

नियर ब्रिज 2/3, गुढ़ा बक्शी नगर जम्मू
मो. 9419304201

फोड़ा

❑ रुबी जुत्शी

धीमी आँच में सेक इसे
काली रूप धारण करना चाहती हूँ
मशाल लेकर निकलना चाहती हूँ
पर कायिरों की तरह बैठी हूँ
मैं भस्म हो रही हूँ
कुढ़ती रहती हूँ अपनी लज़्जा से
ज्वालामुखी बन जाती,
फट जाती भीतर-ही-भीतर
और फटती ही रहूँगी तब तक।
इक फोड़ा बनता, पकता, फटता
गन्ध भरा दुर्गन्ध भरा
फटने के लिए फड़फड़ाता,
पर मैं फटने न देती उसको
शायद इसकी दुर्गन्ध में
मेरा भेदभाव मेरा जातिवाद
मेरा छूतछात पलता है।
मैं भागना चाहती, रोना चाहती
चिल्लाना चाहती हूँ,
इस दुर्गन्ध को सामने लाकर
ताकि साफ हो जाए मेरा हृदय
स्वच्छ रक्त बहे मेरी नसों में
जब तक ऐसा ना हो जाए
शायद तब तक रहूँगी मैं आदर्श रहित
वंश रहित, नाम रहित
केवल एक शून्य शून्य शून्य।

ooo

मेरे चांद

❑ चंचल शर्मा

दूर गगन में तारों से
अठखेलियां करते
मेरे चांद
कितना कोमल
तुम्हारा रूप
कितनी शीतल
तुम्हारी चमक
हृदय को गुदगुदाती
किरणें
पर-शायद
तुम बेखबर हो
इक चकोरी के
दिल की धड़कन से
किसी विरहन
की सुलगती आह से
या
दुनिया से अनजान
सात जन्मों साथ
निभाने का वादा
करते दो प्रेमियों की
उमंगों से!
सच कहो –
क्या तुमने कभी
महसूस की है ?
अमावस की
काली रात की कसक
टप-टप करते
सिसकियां लेते
उन अनमोल
आंखों के मोतियों का
दर्द ?
शायद ही कभी।
आखिर
क्या संदेश देता है
तुम्हारा यह खामोश
आकर्षित करता
चंचल चेहरा ?
शायद
किसी उजड़े चमन में
फिर इक नया
चकाचौंध कर देने वाला
स्वर्ग – या फिर
इक अथाह और शांत
समन्दर
में सोनामी लाता
ज्वार। ०

रेखायें

❑ राजेश्वर भाखड़ी

रेखायें हर रूप में
जुड़ी रहती हैं
हमारे जीवन से
हमारा अस्तित्व
आधारित है रेखाओं पर

सीधी स्पाट, आड़ी-तिरछी
छोटी-बड़ी, मोटी-पतली
एक-दूसरे को काटती
तो कभी जोड़ती रेखायें
और कभी-कभी
समानान्तर होते हुए भी
अलग-अलग-अकेली
रेल की पटरी की तरह
नदी के किनारों की तरह
फिर भी होती हैं
एक-दूसरे की पूरक रेखायें

निर्जीव होते हुए भी
झिंझोड़ती हैं मस्तिष्क
देती हैं ज्ञान कर्म का
और हाथों में उभर कर
बन जाती हैं भविष्य वक्ता
राह सुझाती हैं रेखायें
साकार करती हैं
मानव की कल्पना को
किसी कनवैस पर उभर कर
जन्म देती हैं आकृतियों को
कहलाती हैं जन्मदातृ रेखायें

मानव हित के लिए
खो देती हैं अपनी परिभाषा
परिवर्तित करती हैं अपना रूप
देती हैं अस्तित्व शब्दों को
शब्द जिनके संयोग से
लिखे गये वेद, पुराण, ग्रंथ, कुरान
ज्ञान दाता हैं रेखायें

मानो आभार दो सम्मान
नहीं करो उल्लंघन
मर्यादा की रेखाओं का
नहीं खींचो रेखायें
मानव-मानव के बीच

हो गई अगर व्यथित
तो आलोप हो जायेंगी
कैसा होगा फिर मानव
आकृति-भाषा-ज्ञान-विहीन
रेखाओं के अभाव में

ooo

लेन-23 ग्रेटर कैलाश, जम्मू

व्यंग्य

बर्थ-डे अनारकली का

❑ राजेन्द्र परदेसी

सुबह आफिस जाने लगा तो श्रीमती जी ने कहा, 'अजी सुनते हो! आज ज़रा जल्दी लौट आना। शर्मा जी के यहाँ शाम को चलना है। उनकी अनारकली का बर्थ-डे है। उनकी मिसेज कल ही कह गयी थी कि आप दोनों जरूर आइयेगा।'

यह तो जानता था कि शर्मा जी मुहल्ले के बड़े आदमी हैं। किसी कंपनी में ऊंचे पद पर हैं। घर में टी. वी. फ्रिज आदि लगा रखा है। सवारी के लिए एक कार भी रख छोड़ी है, जिसका उपयोग वह तो कम, उनकी श्रीमती ज़्यादा करती है। मुहल्ले वालों पर रोब-गालिब करने के लिए वे पास-पड़ोस की महिलाओं को कभी-कभार बाज़ार जाते समय कार में बिठा लेती हैं। इन महिलाओं से काम तो वे नौकरानियों का ही लेती हैं, लेकिन बहन जी भी कहती रहती हैं। काम भी निकल जाये और बुरा भी न मानें।

दो-चार बार मेरी श्रीमती को भी कार में घुमा क्या दिया, वह भी उनकी भक्त हो गयी है। जब देखो, उनकी प्रशंसा के पुल बाँधती रहती है।

शर्मा जी जब कार ले आये तो श्रीमती जी ने ही पहले-पहल इसकी सूचना मुझे दी थी। लेकिन उनके यहाँ अनारकली कब आयी, इसकी सूचना आज तक मुझे नहीं मिली थी। आज पहली बार उसके बारे में सुन रहा हूँ।

शर्मा जी बड़े आदमी ठहरे। बड़े आदमियों की बड़ी बातें होती हैं। इस कारण अधिक कुछ नहीं पूछा। श्रीमती जी को भी अब कुछ नहीं कहना है, इसलिए अपनी साइकिल आगे बढ़ायी ही थी कि पुन: उनकी आवाज सुनाई पड़ी, 'अजी भूलना मत, जल्दी ही लौटना ..... और सुनो, उसके लिए कोई चीज़ ज़रूर लेते आना, यह निर्देश देकर दरवाज़ा बंद कर लिया।

बन्दा भी साइकिल पर सवार होकर पैडिल मारता हुआ आगे बढ़ने लगा, यह सोचते हुए कि वेतन तो सरकार देती है, लेकिन आने-जाने के समय का निर्धारण खुद श्रीमती जी करती हैं। शायद सोचती हैं कि आफिस न हुआ, खाला जी का घर है। जब मन आया गये, जब न आया नहीं गये।

मेरे साहब मुझ पर कुछ ज़्यादा ही मेहरबा़न रहते हैं। शादी-शुदा हैं, इस कारण पति की पीड़ा को समझते हैं। तभी तो जब हाफटाइम की छुट्टी मांगी तो पहले मेरे मासूम चेहरे को देखा, फिर मुस्कुराकर अपनी स्वीकृति दे दी।

जल्दी घर लौटने की समस्या तो हल हो गयी, लेकिन सबसे बड़ी समस्या जो थी, वह थी, अनारकली के लिए उपहार। मेरे जैसे मन्दबुद्धि वाले की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या लूँ।

विद्यार्थी जीवन में जब मैं इलाहाबाद में पढ़ता था तो 'मुगले आजम' की अनारकली को देखा था। लेकिन मुहल्ले के शर्मा जी को अनारकली को मैंने कभी नहीं देखा। फिर बिना देखे-समझे कैसे, क्या लूँ ?

मेरी समझ ने जब समझने से इन्कार कर दिया तो हार कर 'मुगले आजम' में देखी अनारकली को ही आदर्श मानकर उपहार लेने चल दिया।

शर्मा जी की अनारकली को भी पैदा होना था तो महीने के आखिर में ही पैदा हुई। पहले हफ्ते में पैदा हुई होती तो कुछ और ही रंग होता। अंत में तो घर का खर्च चलाना ही मुश्किल हो जाता है। ऐसे में कोई अच्छा प्रेजेंट कहाँ से लिया जाये ? वह भी अनारकली के लिए।

उधार देने वालों में ले-देकर एक चरणदास ही ऐसा है, जिससे कुछ-न-कुछ मिल जाता है। बाकी तो सब ऐसे हैं कि उनके आगे मुँह खोलने का दिल ही नहीं करता। इस बार भी बेचारे ने खाली नहीं जाने दिया। उधार में एक साड़ी दे दी, इस शर्त पर कि पहली को तनख़्वाह मिलते ही घर जाने से पहले साड़ी का पैसा इधर से देते जायेंगे। मुझे ज़रूरत थी तो उस समय यह शर्त स्वीकार कर ली। सोचा, चरणदास अपनी दुकान देखेगा कि पहली तारीख को मेरा पीछा करेगा। कोई ज़रूरी है कि उसकी दुकान वाली सड़क से ही होकर आफिस जाया करें। बगल वाली गली से तो और भी नज़दीक पड़ता है। इधर से बस एक फायदा है कि साइकिल से उतरना नहीं पड़ता, गली वाले रास्ते में दो जगह उतरना पड़ता है। वह रास्ता ठीक नहीं है।

करूँ भी तो क्या करूँ ? इसके अलावा और कोई चारा नहीं। पहली तारीख को चरणदास को दो सौ दे दूँगा तो महीने का शेष खर्चा कैसे चलेगा। इतनी महंगी न लेता तो लोग क्या कहते ? दो महीने बाद तो गुड़िया की शादी है। आज उन्हें दो सौ की साड़ी दूँगा तो उसकी शादी में कम-से कम चार सौ की तो देंगे ही।

साड़ी लेकर घर पहुँचा तो मन-ही-मन खुश था। श्रीमती जी हर बार मुझे कोसती थी कि मुझे चीज़ें खरीदना नहीं आता। इस बार तो मेरी तारीफ जरूर करेंगी।

साइकिल की आवाज़ से ही उनको पता लग गया कि मैं आ गया हूँ। तुरन्त दरवाज़ा खोलकर पूछा, 'क्या लाये हो?'

खुशी से उनकी ओर पैकेट बढ़ाते हुए कहा, देख लो, फिर मत कहना कि मुझे खरीदारी करनी नहीं आती।

पैकेट खोलकर साड़ी देखते ही श्रीमती जी मेरे ऊपर ऐसे बरस पड़ीं जैसे अचानक बिना बादल के बरसात के साथ ओले गिरने लगे हों। मैं अपनी गल्ती महसूस करने लगा

कि बड़े लोगों के यहाँ तो दो सौ रुपये की साड़ियाँ नौकरानियाँ पहनती हैं, फिर यह साड़ी शर्मा जी की अनारकली क्या पहनेगी। अपनी भूल पर पश्चाताप कर ही रहा था कि श्रीमती जी गरजती हुई बोली, 'कुतिया के लिए यही लाना था ?

पहले तो मेरा माथा ठनका, शायद श्रीमती जी को शर्मा जी की अनारकली से ईर्ष्या हो रही है। इसी कारण उसे मानव जाति से हटाकर पशु की श्रेणी में रख रही है। गुस्सा जब कम हुआ तो उन्होंने स्वयं ही सब कुछ स्पष्ट किया, तब कहीं जाकर समझ में आया कि उनकी विलायती कुतिया का देशी नाम अनारकली है। आज वह एक साल की हो जायेगी, उसी के उपलक्ष्य में 'बर्थ-डे' मनाया जा रहा था।

साड़ी तो आ ही गयी थी। सोचा श्रीमती की लगभग सभी साड़ियां फट गयी हैं। इसका रोना भी रो रही थीं। मौका अच्छा है, क्यों न मक्खनबाजी ही कर डालूँ। तुरंत बोला, 'अच्छा ही हुआ, इसी बहाने तुम्हारे लिए एक साड़ी आ गई। अब जल्दी पहनकर तैयार हो जाओ। शाम के शो में पिक्चर देखने चलेंगे। रही बात शर्मा जो के यहाँ जाने की तो उसके लिए कोई बहाना बना देना। उसमें तो तुम माहिर हो ही।

मेरी मक्खनबाजी सफल रही। तभी तो वे जाते-जाते मुस्करा कर मीठी फटकार देती गयी- 'अजी हटो, तुम बड़े वो हो।'

ooo

बी-1118, इन्दिरा नगर, लखनऊ-226016

क्रिकेट के बारे में मेरे नेक विचार

❑ डा० शिवदेव मन्हास

मेरे यार-दोस्त जानते ही हैं कि मेरे विचार हर चीज़ के बारे में नेक होते हैं। क्रिकेट की तो बात ही अलग है। यह खेल संसार-भर में खेला जाता है और हर आयु-वर्ग के लोग इसके 'फ़ेन' हैं। क्रिकेट के खिलाफ कोई बात कहने का मतलब है-दुनिया-भर के इसके प्रशंसकों से दुश्मनी मोल लेना और मैं परिवार नियोजन की तरह दुश्मनों की संख्या को भी नियोजित करने के पक्ष में हूं। इसलिए, मैं यहां इस लेख में क्रिकेट के बारे में जो कुछ कहूंगा/लिखूंगा, अच्छा-अच्छा ही कहूंगा/लिखूंगा।

क्रिकेट का सीजन हमारे यहां साल में छे महीने का होता है। इस अवसर पर हर चीज़ क्रिकेट-मयी हो जाती है। 'जिधर देखूं, तेरी तस्वीर नज़र आती है।' यह पंक्तियां किसी शायर ने क्रिकेट-मयी वातावरण देख कर ही शायद रची होंगी-ऐसा मेरा मानना है।

मेरा यार वर्मा तो मेरे से भी अधिक खोजी प्रवृत्ति का जीव है। उसका दावा है कि क्रिकेट का खेल संत कबीर के समय में भी खेला जाता रहा होगा और शायद कबीर साहब ने क्रिकेटी वातावरण देख कर ही लिखा था-

'लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल'
लाली देखन मैं गया, मैं भी हो गया लाल।

वर्मा जी के अनुसार अध्यात्मवादियों और रहस्यवादियों ने इसके अर्थ को समझने में अब तक भूल की है।

क्रिकेट का सीजन आते ही क्रिकेट प्रेमी रेडियो या टी.वी. के पास बैठना शुरू कर देते हैं और कई-कई घंटे एकाग्रचित्त होकर क्रिकेट मैच देखते/सुनते है। ऐसी कठिन तपस्या बड़े-बड़े सिद्धहस्त योगी भी नहीं करते! एक ही मुद्रा में, बिना हिले-डुले, बिना पलक झपके, बिना खाए-पीए रहना तो योगी-साधकों के बस की भी बात नहीं है।

क्रिकेट का सीजन आते ही कुछ गृहणियों को चैन की सांस लेना नसीब हो जाता है। जिनके लाडले (पति या बेटे) घर मिलते ही न हों, वे भी इन दिनों उपलब्ध होने लगते हैं। (यह बात और है कि उनका घर होना, न होना एक समान होता है क्योंकि मैच के समय

उनसे कोई काम करवाना तो दूर, उन्हें कुछ पूछना भी खतरनाक हो सकता है। अर्थात् आ बैल मुझे मार वाली बात हो सकती है।)

क्रिकेट का सीजन शुरू होते ही दिलफेंक आशिकों की तो चांदी हो जाती है। इन दिनों उनकी प्रेमिकाएं भी नर्म प्रवृत्ति की हो जाती हैं। आम स्थिति में तो प्रेमी अपनी प्रेमिका का दीदार करने अथवा उनसे बात करने को तरसते हैं। पर, क्रिकेट का मैच शुरू होते ही स्थिति उल्ट हो जाती है। कुछ मूड़ी प्रेमिकाएं तो अपने प्रेमियों से स्कोर पूछ कर ही उन्हें 'क्लीन-बोल्ड' कर देती हैं। प्रेमियों को भी इस क्रिकेट-मयी वातावरण में अपनी भावी प्रेमिका से बात करने का अच्छा-खासा बहाना मिल जाता है-स्कोर बताने वाली सुन्दरी अपने 'दिल की गली' अथवा 'कवर' में ही स्थान दे दे, क्या पता ? कुछ प्रेमी अपना रेडियो या टी. वी. खराब कर के अपनी पड़ोसिन प्रेमिका के घर जाते देखे गए हैं। क्योंकि वहां क्रिकेट के साथ देवी के दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हो जाता है।

क्रिकेट का सीजन शुरू होते ही बिजली विभाग की कृपा-दृष्टि भी होने लगती है। शायद वह भी इस मौसम में बिजली की कटौती करना भूल जाते हैं। जिन विभागों में अधिकारी स्वयं क्रिकेट के शौकीन होते हैं, वहां की उपस्थिति तो पूरी रहती है पर, क्रिकेट के बारे में अच्छी राय न रखने वाले अधिकारियों के कार्यालयों में इन दिनों अक्सर मुलाज़िम बीमार रहने लगते हैं। ऐसे मुलाजिमों को उनके डाक्टरों ने केवल 'बैड-रैस्ट' की ही सलाह दी होती है।

क्रिकेट का सीज़न आते ही लोग आपसी भेद-भाव और साम्प्रदायिक तनाव भूल कर राष्ट्रीय एकता के पवित्र सूत्र में बंध जाते हैं। सारा राष्ट्र खाना, पीना तथा सोना भूल कर अपने देश की टीम को जितवाने में जुट जाता है। ऐसे में अपने देश के साथ खेलने वाली हर टीम हमारी दुश्मन हो जाती है। और जैसे-जैसे मैच निर्णायक मोड़ पर पहुँचता जाता है, हमारी मुट्ठियां भिंचती जाती हैं। अपने देश के खिलाड़ी द्वारा बनाए गए हर स्कोर के साथ हमारा खून बढ़ता है और विरोधी खिलाड़ी के हर रन लेने पर सारे राष्ट्र का खून सूखता/सड़ता है। अपने देश की टीम जीत जाए तो जश्न, वर्ना सोग मनाया जाता है। क्रिकेट को कुछ लोग **'फनी गेम'** कहते हैं और कुछ **'मनी गेम'**। सारी दुनिया फिल्मी लोगों की दीवानी होती है जब कि, फिल्मी लोग (हीरोइनें) क्रिकेट के खिलाड़ियों पर मरतीं हैं। क्रिकेट के खिलाड़ी सिर्फ़ गेंद ही 'कैच' नहीं करते, बल्कि लाखों-कराड़ों के दिलों पर राज करने वाली हीरोइनों को भी 'कैच' कर लेते हैं।

जिन लोगों ने फिल्मी हीरोइनों को अपने दिल में बसा रखा हो उनको मेरी नेक सलाह यह है कि वे शीघ्र-अति-शीघ्र क्रिकेट खेलना शुरू कर दें। नहीं तो, ऐसा भी हो सकता है कि मौका हाथ से निकल जाए और उन्हें यह फिल्मी गीत गाना पड़े-

'सब कुछ लुटा के होश में आए तो क्या हुआ ?'

सरकार के आगे भी मेरा विनम्र निवेदन है कि वह अधिक-से-अधिक मैचों का आयोजन करवाती रहे, ताकि वर्ष-भर राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय एकता का संचार होता रहे। कितना अच्छा हो यदि मैच देखने वालों और मैच सुनने वालों को 'स्कालरशिप' दिये जाएं और पूरा सीजन मैच में डूबे रहने वालों को '**क्रिकेट-सम्राट**', '**क्रिकेट-चक्रवर्ती**', '**क्रिकेट-महाराजा**' आदि पुरस्कार बांटें जाएं।

अंत में, मेरा निवेदन उन गृहणियों से भी है, जिनके लाडले क्रिकेट के सीजन में कोई काम करना पसन्द नहीं करते। उन्हें चाहिए कि क्रिकेट के इन दीवानों को क्रिकेट के इस 'आध्यात्मिक' वातावरण में नाहक तंग न किया जाए और यथासंभव हो, मैच देखने/सुनने में इन देश-भक्तों का चाय और पकोड़े आदि परोस कर सहयोग किया जाए।

०००

डोगरी विभाग, जम्मू विश्व-विद्यालय जम्मू तवी-6

दोहे

❑ अर्श सहबाई

इस सूरत में किस तरह दिन में रात न हो
बैठे रहे वो सामने लेकिन बात न हो
अपने किसी उसूल पर कभी न ठहरे लोग
जितनी सादा सूरतें इतने गहरे लोग
आंखों में इक करब है दिल में गम की फांस
हम ऐसे माहौल में कब तक लेंगे सांस
हुआ है नज़र दहेज़ की घर का सब सामान
जब भी किसी गरीब ने किया है कन्यादान
साफ़ कहूं हर बात मैं और उसे संकोच
किस दर्जा है मुख्तलिफ मेरी उसकी सोच
इक दूजे में जज़्ब हैं दिन में जैसे रात
मौत भी है इक ज़िन्दगी कौन यह समझे बात
रेज़ो में बह जाए दिल यूं देते हैं चीर
उन नैनों के बाण हैं या अर्जुन के तीर
झूठ कभी सच बन सके कोशिश है बेकार
इक पल में गिर जाएगी रेत की यह दीवार

०००

आदिवासी कहानी

एक और युद्ध

❑ डॉ. लीला मोदी

ट्रिन..ट्रिन.....ट्रिन..ट्रिन.....की आवाज़ आते ही मानुषी नम्बर देख कर मोबाइल कान से लगाकर कहती है। हैलो स्वीटी, आवाज़ आती है-अरे क्या यार मानुषी! तुमने भी पी० एच० डी० का टॉपिक ''झारखण्ड आदिवासियों का सांस्कृतिक अध्ययन'' चुना है। कोई हायर जैंट्री महिला आयोग, मानवाधिकार आदि से रिलेटेड टॉपिक चुनती। ये आदिवासी क्या हैं, कौन हैं, जैसे हैं वैसे ही रहेंगे। इनका डबलपमेंट न तो हुआ और न ही होगा। बिलोस्टेण्ड्र्ड जंगलियों के लिए समय क्यों बर्बाद कर रही हो ? तुम्हें क्या हो गया है ? मेयो कॉलेज के बाद एम० डी० एस० यूनिवर्सिटी से रिसर्च करोगी !. अजमेर में किसी से चक्कर तो नहीं चल गया। तुम्हारे डैड भी मेरे डैड जितने बड़े लीडर हैं। कितना अच्छा होता तुम भी मेरे साथ कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से रिसर्च करती। जैसे हरिवंश राय 'बच्चन' जी, अंग्रेजी साहित्य में पी०एच०डी० करने वाले पहले भारतीय बने वैसे ही तुम भी समाजशास्त्र में पी०एच०डी० करने वाली प्रथम भारतीय महिला बनती। मैं तो जार्ज बरनार्ड शॉ पर पी० एच० डी० करूँगी।

मानुषी बोली बस स्वीटी बहुत हो चुका! पहले तुम स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बारे में जानो। उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध कर हिन्दू समाज को चार वर्णों में पुनर्गठित करने का प्रयास किया। इनके द्वारा प्रज्वलित दीप ज्योति के आलोक से प्रेरित होकर मेरी भी समाज की मुख्य धारा से कटे आदिवासियों को समाज से जोड़ने की परिकल्पना है। फिर पापा का क्षेत्र है। मैं आदिवासियों के लिए कुछ करना चाहती हूँ। आदिवासी भी इस देश का एक अंग है। पूर्ण विकास और सम्पूर्ण आज़ादी के लिए पढ़े-लिखे लोगों की अभी इस देश को बहुत ज़रूरत है। काश तुम भी ''अरावली उद्घोष'' और ''युद्धरत आम आदमी'' जैसी प्रमुख जनचेतना युक्त पत्रिकाओं का अध्ययन-मनन करती।

झारखण्ड का ''छऊ नृत्य'' आज अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बन चुका है। एक साल पहले की बात याद करो। छब्बीस जनवरी को जब हम दूरदर्शन पर लाल किले के आगे से निकलने वाली झाँकियाँ देख रहे थे। एक वीर रस के नृत्य में पात्रों की सामूहिक तेज लयात्मक गति देख कर तुम कितनी रोमांचित हुई थी। पौराणिक, ऐतिहासिक कथाओं के लिए पात्र तरह-तरह के मुखौटे धारण कर रहे थे। तब तुमने अखबार का एक मुखौटा काट कर लगाया था और कहा था मैं क्रांति योगी बिरसा मुण्डा हूँ। मैंने आदिवासियों में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ संघर्ष और आदिवासी संस्कृति पर आधारित राज्य की स्थापना के लिए हंडिया व शराब पीने पर पूर्ण पाबन्दी की शर्त

रखी थी। हंड़िया सेवन पर पूरी तरह से रोक की शर्त ने टाना भगत आंदोलन में हज़ारों आदिवासियों में ऐसी ताकत पैदा कर दी थी, जिसको ब्रिटिश हुकूमत कभी पराजित नहीं कर सकी।

मैं भगवान बिरसा मुण्डा के गाँव उलीहातू खुटकट्टी गाँव दलभंगा कुचायी और संथालों के बीच लगने वाले ऐतिहासिक हिजला मेले पर डेटा कलेक्शन हेतु जाऊँगी। मुण्डाओं के खुटकट्टी गाँव और उंरावों के भूइहर गाँवों के बसने के क्रम में अब हर तरह की आवश्यकता की पूर्ति के लिए वहाँ कई तरह की कारीगर सहयोगी जातियाँ भी बस गई हैं। स्वाँसी, चिक, बडईक, तांती कपड़ा बुनते हैं। लोहे का काम लुहार करते हैं। बॉस के सामान बनाने का काम तुरी, महली, नायक, बंझू, कुम्हार, अहीर, महतो आदि करते हैं। वहाँ ''सहिया फूल'' और ''मीता मित्रता'' जोड़ने की परम्परा आज भी है। बस, बस, बस। प्लीज, स्टॉप दिस टॉपिक, डॉ० मानुषी, टेक केयर, एण्ड बाय।

मानुषी डेटा कलेक्शन हेतु संथाल परगना के दुमका जिले में प्रतिव्रर्ष लगने वाले हिजला मेले से एक माह पूर्व ही आ जाती है। एक बैग में नोट-बुक, टार्च, टेप-रिकार्डर, कैमरा और आवश्यक सामग्री लेकर प्रतिदिन आदिवासी क्षेत्र के लोगों से साक्षात्कार करती है। वहाँ की स्थिति से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है। आज़ादी के इतने वर्ष बाद भी आदिवासी समाज का पिछड़ापन, भूमि हस्तान्तरण व महाजनी प्रथा यथावत कायम है। इन समस्त परिस्थितियों के मूल में है ''हंडिया'' (चावल की बनी शराब) और सारी मुसीबतों की जड़ है, वहाँ सुनियोजित साजिश के तहत खोली गई शराब की भट्ठियां। आदिवासियों की भूमि लूट और धोखे से जमीन हड़पने के पीछे का मारक हथियार हंडिया। इन्होंने हंडिया के लिए जमीन बन्धक रखी और वो उनके हाथ से सदा के लिए निकल गई। पहले हंडिया चावल, गोंदली और कोदो से बनती थी। बाद में चालीस तरह की जड़ी-बूटी रानू से बनने लगी। अब रानू में धतूरे के बीज का प्रयोग कर महुआ और चुलाई शराब मिश्रित करके पीते हैं। जो मानव मस्तिष्क को कुंद और शिथिल कर देता है। इससे नशे का प्रभाव ज़्यादा देर तक बना रहता है। उसने गाँव-गाँव में यह कहावत सुनी ''जनी छूटी तो छूटी हंडिया न छूटी''। पूरा झारखण्ड़ हंडियां के नशे में डूबा है। इसी कारण यहाँ का विकास ठप्प है। मानुषी ने सोचा क्या कारण हैं जो बिरसा आंदोलन और टाना भगत आंदोलन भी यहाँ से हंडियां सेवन की जड़े नहीं उखाड़ सका।

वह समझ जाती है कि आज भी आदिवासी समाज को अंधविश्वास, हंड़िया, शराब चलवा, जादू-टोना, डायन और ओझा-गुणी के चक्कर ने अजगर जैसी कुंड़लियों की जकड़न में जकड़ रखा है। आदिवासी समाज की दुर्दशा से व्यथित मानुषी पुलिस थाने जाती है। अपना परिचय देकर शोध के बारे में बताती है और कानून के सख्त शिकंजे द्वारा कुप्रथाओं को रोकने का आग्रह करती है। साथ ही पुलिस के सहयोग द्वारा सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना जागृत करने की इच्छा भी प्रकट करती है। पुलिस अधिकारी उसे वहाँ की वास्तविक सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति से परिचित कराने हेतु सुबोधी मराण्डी नामक महिला से मिलवाते हैं।

सुबोधी पहले तो उससे मिलने को मना कर देती है, पर पुलिस अधिकारियों द्वारा बार-बार समझाने पर संकोच के साथ मानुषी को अपनी झोंपड़ी में ले आती है। वहाँ आँसुओं की झड़ी के साथ आपबीती संक्षेप में सुनाती है। मानुषी बहन मैं जामताड़ा के गोआ केला गाँव की हूँ। मैं और मेरा पति एक पत्थर-क्रेशर पर काम करते थे। क्रेशर से छुट्‌टी होने के बाद हम साथ-साथ झोंपड़ी में आते, खाना खाते, हिलमिल कर रहते थे। इस तरह समय हँसी-खुशी से गुजर रहा था। कुछ समय बाद हमें पता चला कि वन-विभाग की जमीन पर पत्थर की झड़ाई चोरी से की जाती है। क्रेशर पर चोरी का पत्थर आता है। धीरे-धीरे हमने पत्थर-क्रेशर-माफिया और वन-विभाग माफिया के खिलाफ अपने गाँव के लोगों को गोलबन्द किया। इसके बाद दलाल-माफिया हमारे पीछे पड़ गया। उन्होंने मेरे पति को जमकर हंडिया (शराब) पिलायी और गाँव में बैठक करके मेरे पति से कहलवा दिया। मेरी पत्नी डायन है और हत्या की सजा सुना दी। गाँव के दबंग लोगों ने मुझे पीट-पीट कर अधमरा कर दिया। हत्या से बचने के लिए मैं गाँव-घर छोड़ने को मजबूर हो गई। मुझे सामाजिक सक्रियता छोड़नी पड़ी। मैं आज पुलिस की मदद से ही जिन्दा हूँ। कहते-कहते उसकी हिचकियां बंध गई। मानुषी की आँखें भी छलकने लगी। वह सुबोधी की पीठ प्यार से सहलाते हुए बोली "हिम्मत वाली हो, अभी तो इस हिम्मत की बहुत ज़रूरत है।" मन-ही-मन मानुषी सारी मुसीबतों की जड़ हंडिया के प्रति आक्रोश से भर गई।

दाहिना कंधा खुला, सफेद साड़ी में लिपटी, विधवा रूपी मुर्म उसे पाषाण प्रतिमा-सी लगती है। आभूषण रहित शरीर। दाहिने गाल पर एक गोल बिन्दी, दाढ़ी पर तीन और दाहिनी भुजा पर देवी आकृति का गुदना गुदा हुआ था। सुबोधी उसे अपनी दास्तान बताने का आग्रह करती है। वह पथराई आँखें आकाश की ओर उठा कर कहती है - "मैं बन्द गाँव में सबसे रूपवान थी। आपने बन्द गाँव के मोहन सिंह मुण्डा का नाम तो सुना होगा ? वह उन ओझाओं में से एक है, जो डायन की पहचान करने में पूरे इलाके में जाना जाता है। उसकी घिनौनी नज़रे मेरे रूप और योवन पर शुरू से ही थी। मैंने उस मुशटन्डे को कभी घास नहीं डाली। मेरा विवाह अथाह सम्पति के मालिक दिलीप मुर्म से हो गया। वह मेरे मरद की गबरू जवानी और अंगारे उगलती बिल्लौरी आँखों से दुम दबाए फिरता था। बाद में हंडिया पिला-पिला कर उनका दोस्त बन गया। अब हंडिया ही उनका आहार बन गयी। एक दिन ससुरी हंडिया ही उनके प्राण ले गई। उनकी मौत के बाद ओझा ने समझा अब अकेली विधवा औरत है। मेरी दाल गल जायेगी। हम खेतों में रोकनी कटनी के बाद हंडिया पिलाकर "मदइत प्रथा" निभाते हैं। इसमें मजदूरों को पारिश्रमिक से अलग सम्मान के बदले यह "थकौनी" देते हैं। हमारे खेतों में कटनी के बाद सभी हंडिया में डूबे थे। ओझा मौका देख कर मेरे घर में घुस आया। मैंने उसकी यौन इच्छा को ठोकर मार दी, साथ ही गाँव वालों को उसकी असलियत बताने की धमकी भी दे डाली।

इसके बाद ओझा मुझसे बदला लेने पर उतारू हो गया। वह गाँवों में कहता फिरा, "जानते हो रूपी के बच्चा इस लिए नहीं हुआ क्योंकि वह डायन है! पति इसलिए मरा कि वह डायन है।" इसी बीच गाँव में महामारी से बच्चे बीमार पड़ने लगे। एक बच्चे की मौत होते ही सारे

हादसों का दोष मुझ पर मढ़ दिया। उसने मुझे आम जनता के सामने तरह-तरह से अपमानित किया। कई लोगों ने मुझे मारा, पीटा। उसकी बदले की आग इससे भी नहीं मिटी। मानुषी ने कान बन्द कर लिए और क्रन्दित स्वर में बोली बस, बस रूपी मुझसे अब और नहीं सुना जायेगा। इस पर सुबोधी बोली मानुषी बहिन जो बातें तुम सुन भी नही सकती, वह नारकीय यंत्रणाएं हमें भोगनी पड़ती हैं। अपने ही लोगों और समाज के द्वारा दी गई सजाएं, अपने ही लोगों और समाज के बीच। रूपी ने शेष कहानी सुनाना शुरू किया-ओझा, जागंरू और सोखा की मिलीभगत ने मेरे परिवार की हत्या करवा कर सारी सम्पत्ति हड़प ली। मुझे भी हत्या की सजा मिली थी, पर सुबोधी पुलिस की मदद से मुझे बचा लायी। बची भी क्या ? अब तो जिन्दा लाश हूँ। पुरानी बातें याद आते ही वह सिहर उठी और फूट-फूट कर रोने लगी। लज्जा से मुँह छुपा लिया। मानुषी ने उसके मुँह से हाथ हटाते हुए कहा "रूपी शर्म तो कामाग्नि में धधकते उन कामी कीड़ों को आनी चाहिए जो बदले की आग से वशीभूत होकर निस्सहाय, अकेली विधवा और गरीब औरतों का शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण करते हैं। तुम और सुबोधी जैसी देवियां तो पुरुष सत्ता के खिलाफ स्त्रियों के संघर्ष का प्रतीक हो। तुम्हें हंडिया और ओझाओं से औरतों व समाज को बचाने के लिए सामाजिक आन्दोलन का सूत्र बनना होगा।"

मानुषी सोचती है "यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमंते तत्र देवता:" की इस धरा पर क्या कोई नारी डायन हो सकती है ? क्या इसीलिए इस धरती से देवता कूच कर गए हैं ? थोड़ी देर में वहाँ अपनी-अपनी व्यथा सुनाने सुमित्र तांतो, नूनी बाला, पारू, बेलवा, फुलेवा. सुगुवा जैसी दर्जनों डायन घोषित औरतों आ जाती हैं। सुमित्र तांतो ने कहा "मैं नीपुड़ी देवी की बहिन हूँ। नीपुड़ी को उसकी तीन बेटियों और दो बेटों के साथ मार डाला। डायन बता के ! कहा कि उसकी नज़र से गाँव में एक गाय व बैल मर गया।" नूनी बाला बोली "यहाँ दारू पीकर घरों में पत्नियों की पिटाई तो हर घर में आम बात है। पहली पत्नी से मन भरते ही उसे डायन बता कर छोड़ देते हैं। दूसरी ले आने से बेसहारा औरतों की संख्या बढ़ती जा रही है।" उनमें से चार-पाँच औरतों के ललाट या कनपटी पर तीन लकीरें गुदी हुई थी। लकीरें देख कर मानुषी ने उन औरतों से पूछा ? तुम सबने यह तीन लकीरें क्यों गुदवा रखी हैं ?

सुबोधी बताती है "लगभग चार-सौ बरस पहले रोहतासगढ़ (रूईदासगढ़) किले पर मुगल सैनिकों ने कब्जा करने के लिए आक्रमण कर दिया। उँराव के आदिवासी पुरुष तो हंडिया पीकर मताल पड़े हुए थे। तब आदिवासी औरतों ने तीन बार सैनिक वेश बना कर मुगलों से मुकाबला किया। औरतों ने ऐसा युद्ध किया कि तुर्क अफ़गान सेनाओं के छक्के छूट गए। यह तीन लकीरें हमें उसी रोहतास गढ़ जीत के युद्ध की याद दिलाती हैं। इस पर मानुषी उनसे कहती है-"अच्छा तो तुम उन वीर आदिवासी महिलाओं की कायर वंशज हो जो अपने ही समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को मिटाने के लिए एक और युद्ध नहीं कर सकती। क्या तुम्हारा खून पानी हो गया है।" सुबोधी कहती है-"मानुषी जी, इस समाज मे जिसने भी कुप्रथाओं को चुनौती दी। विद्रोह किया। उसी को डायन बता कर हत्या कर दी। बिहार सरकार द्वारा बनाए डायन हत्या प्रतिरोध अधिनियम को, झारखण्ड सरकार द्वारा मानने के बाद

महिलाओं की हत्याओं में तो कमी आई है, लेकिन डायन घोषित, विद्रोही और निष्कासित महिलाओं का एक अलग ही गाँव बन गया है। अब आप ही बताओं हम क्या करें ?''

मानुषी बोली हम सबको मिलकर 'एक और युद्ध' करना होगा। भारत माँ के माथे पर नारी के लिए डायन शब्द का कोढ़ रूपी कलंक हमेशा के लिए मिटाना होगा। बिरसा आंदोलन और टाना भगत आंदोलन के बाद हंडियां की शेष बची जड़ें उखाड़नी होगी। यह युद्ध अपने लिए, अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और रोहतास गढ़ युद्ध की वीर आदिवासी महिलाओं के गौरव के लिए होगा। मानुषी सब महिलाओं को एक पशु के पास लेकर आती है। टार्च से प्रकाश डाल कर कहती है ''ध्यान से देखो यह एक पशु है। यह अपने तन पर एक मक्खी को भी नहीं बैठने देता। यदि कोई मक्खी बैठ भी जाए तो यह निरा पशु भी अपने तन पर बैठी मक्खी खुद ही उड़ाता है। सभी में ज्ञान का प्रकाश कौंध जाता है। दृढ़ संकल्प के साथ एक स्वर में उद्घोष करती हैं-''हम एक और युद्ध अवश्य करेंगे।'' मानुषी उन्हें आन्दोलन की समस्त रूपरेखा प्यार से समझाती है। न रहेगा बांस और न ही बजेगी बांसुरी। पहले हम अपने द्वारा उत्पन्न अभिशप्त कुप्रथाओं व समस्याओं को समाप्त करें। इसके बाद मैं पिता जी से कहकर तुम्हारी मूलभूत और विकास सम्बंधित समस्याओं को दूर करवाऊँगी।

सभी महिलाएँ रात के एक बजे भीषण अंधकार में मन में नयी आशा, जोश और प्रकाश की ज्योती जलाए 'एक और युद्ध' के लिए आवश्यक औजार और लट्ठ लेकर निकल पड़ती हैं। एक टोली सुबोधी के नेतृत्व में, दूर दिशा में चल पड़ती है। कुछ रूपी के साथ दूसरी दिशा में यंत्रवत चल देती हैं। तीसरी सुमित्र तांतो के आगे-पीछे। चौथी नूनी बाला के पीछे लग जाती हैं। शेष बची मानुषी को साथ लेकर पास में बनी शराब की भट्ठियों के पास आ जाती हैं और शराब के भांडे और भट्ठियां तहस-नहस कर देती हैं। चार बजे तक सभी अपना काम तमाम कर पुन: अपनी-अपनी झोंपड़ियों में जाकर आराम से सो जाती हैं।

अगले दिन गाँव में कोहराम मच जाता है। आखिर एक रात में ही शराब की भट्ठियां किसने तुड़वा दीं। इस घटना को सुनकर घरों में रहने वाली आदिवासी महिलाएं बड़ी खुश होती हैं। वह सोचती हैं चलो कुछ दिन गाली-गलौच, मार-पीट आदि से बचेंगी। कुछ दिनों के बाद फिर भट्ठियां बनने लगती हैं पर पूरी होने से पहले ही तोड़ दी जाती हैं।

एक अमावस की रात रूपी, सुबोधी कुछ औरतों के साथ ओझा के घर धावा बोल देती है। उसे मारती है और मुहल्ले में घसीट लाती है। बहुत से लोग इकट्ठे होने पर रूपी दहाड़कर पूछती है-''बता ओझा क्या ईश्वर के यहाँ से कोई औरत डायन पैदा होती है ? डायन कौन है? अब तू किन-किन औरतों को डायन बनाएगा ? ओझा हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता है-''भगवान के यहाँ से तो कोई भी डायन बनकर नहीं आई। मेरी बुरी नीयत ने तुम्हें और कितनी ही औरतों को डायन बना दिया। मेरे मन में बसी कुत्सित भावनाएं डायन हैं। रूपी मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। ओझा की हालत देख जागरू और सोखा वहाँ से दबे पाँव खिसक जाते हैं। भट्ठियों का मालिक और गाँव के लोग ताड़ जाते हैं। भट्ठियाँ कौन तोड़ रहीं हैं। उसी रात झोंपड़ियों में आग लगवा दी जाती है। उस आँच में तपकर उनका इरादा और दृढ़संकल्प और पक्का हो जाता है। अब

वह शराब की भट्ठियों के आस-पास के पेड़ों के नीचे आकर रहने लग जाती हैं।

घरों में रहने वाली आदिवासी महिलाओं को जब इस बात का पता चलता है तो वह भी इस युद्ध में शामिल होने की ठान लेती हैं क्योंकि विवाह के बाद किसने चैन की साँस ली थी। सबके पति शराबी थे। न काम के न काज के। महिलाएँ मजदूरी करती, वह हंडिया में डूबे रहते, रोकने पर लट्ठ बरसते। वे सवेरे आ-आ कर अपनी इच्छा बताती हैं। मानुषी व सुबोधी उनको शिक्षा देतीं हैं-जब वह शराब पीकर आए, तुम हरगिज दरवाज़ा मत खोलना। चाहे लाख गाली दे। गालियां खा लेना। मार तो नही खानी पड़ेगी ना, हाड़ तो न टूटेंगे। नशे में डूबे पुरुष जब घर में घुसने की कोशिश करते हैं तो महिलाएं धक्के मार-मार कर उन्हें घर के बाहर निकाल देती हैं। पुरुष नशे में रात भर झोंपड़ियों के बाहर पड़े रहते हैं। सवेरा होने पर वह अपनी पत्नी से झेंपते हैं। आंख भी नहीं मिला पाते। यह काम कई दिनों तक चलता रहता है। न तो शराबी पतियों के लिए दरवाजे खुलते हैं, न ही शराब की भट्ठियाँ बन पाती। हाँ, अश्लील गालियों की रोज बरसात होती है। आस-पास के क्षेत्रों की शराब भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। मालिक बार-बार भट्ठियां बनवाने का प्रयास करते हैं। औरतें मिलकर भट्ठियां बनवाने वाले मालिक और जो भी वहाँ आता है उसकी जमकर धुलाई करती हैं। हंडिया बेचने की भनक मिलते ही लट्ठ लेकर दौड़ पड़तीं हैं।

रोज-रोज होने वाले 'एक और युद्ध' से पुरुष घबरा जाते हैं। औरतों के आधार पर चलने वाला उनका स्वर्गीय जीवन नरक बन जाता है। सब मिलकर शांति से रहने का उपाय सोचते हैं। गाँव के मुखिया को बुला कर तुरंत सामूहिक निर्णय लेते हैं। सबसे पहले निष्कासित और बेसहारा औरतों को बसाया जाये। हंडिया का पारम्परिक उपयोग सिर्फ सिंगबोंगा, बांदोबोंगा, धर्मेस व पुरखा, धार्मिक कृत्य व प्रकृति पूजा के लिए, पवित्र भाव से करेंगे। सामाजिक पर्व, त्योहार, शादी-विवाह, अतिथि सत्कार व अन्य खुशी के मौके पर मिलकर पिएंगे। सर्पदंश के समय दवा के रूप में पिलाया जायेगा। गाँव में छूटे अधूरे काम को पूरा करने पर पिया जायेगा। पुरुष एक स्वर में उद्घोष करते हैं-आदिवासी महिलाओं द्वारा किए गए "एक और युद्ध" की जय।

आज मानुषी अजमेर जा रही है। सतपुड़ा उद्घोष "**एक और युद्ध**" की जय की स्मृतियों के साथ। "**अरावली उद्घोष**" द्वारा प्रेरित शोध स्वप्न साकार कर। आदिवासी जन सैलाब आँखों में आँसू और दिल में प्यार का छलकता सागर लिए उमड़ पड़ता है। मन आँखों और भीगी पलकों से उसे विदा करने।

०००

291, मोती स्मृति टिपटा कोटा (राज.) -324006

सिर्फ एक आदमी

❑ आनन्द लहर

लोग उसके बारे में कई तरह की बातें करते हैं। कुछ कहते हैं पागल है, क्योंकि ख़्याल में दीवाना है और कई तो यहाँ तक कहते हैं कि उसने ज़रूर कोई जुर्म किया है। मगर कुछ यह भी कहते हैं कि भगवान का भक्त है पिछले जन्म में उसने हत्या की है।

मगर वह हर रोज़ सुबह दरवाज़े के बाहर खड़ा होकर यह कहता है।

''एक आदमी सिर्फ एक आदमी।''

लोग उसकी बात सुनते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। कभी-कभी लगता है कि यह लोग शायद आदमी नहीं हैं। क्योंकि कुत्ते को अगर उसकी जुबान समझ में न आये तो कोई बात नहीं मगर अजीब लगता है आदमी को आदमी की जुबान समझ न आये।

एक आदमी दर्द से कराहता रहा कि पेट में भूख है मगर कोई भी उस की जुबान न समझ सका। लिहाज़ा उसकी बात भी कोई न समझ सका। मगर वह तो हर रोज़ चीखता रहता है और ज़ोर-ज़ोर से कहता है।

''एक आदमी सिर्फ एक आदमी।''

असल में उनके पास वक़्त नहीं है। लोग यह वक़्त कहाँ छोड़ आये हैं यह उसकी समझ में नहीं आ रहा है क्योंकि उन्हें तो युग मिले थे, सदियाँ मिलीं थीं। मगर सब कहाँ खो गये। सब कहाँ रह गया। यह वक़्त उन्होंने किसको दिया यह समझना भी मुश्किल है। वक़्त का साथ उम्र के साथ था और लोग उम्र का मज़ा इसलिए न ले सके क्योंकि उनके दिल में हमेशा यह डर रहता था कि यह कम हो रही है। हालांकि उम्र न कम होती है न ज़्यादा। यह गिनती की तरह है जिसे जब जहाँ चाहे शुरू कर दो और जहाँ चाहो ख़त्म कर दो, उसे दोबारा शुरू कर दो।

होता यूँ है कि रात होते ही वहाँ पर एक लाइन लगा दी जाती है फिर उसके ज़रिये बारी-बारी हर शख़्स अन्दर जाता है और फिर सुबह बाहर आ जाता है । जब वह अन्दर जाता है तो मुकम्मल इन्सान होता है मगर जब सुबह बाहर आता है तो उसमें कहीं-न-कहीं कमी होती है। कभी उस का हाथ ज़ख़्मी होता है, कभी सीना, कभी बाल उखड़े हुए होते हैं तो कभी कांधा ज़ख़्मों से भरा होता है, गोया कि कोई-न-कोई कमी ज़रूर होती है।

फिर अगर देखा जाये तो यूँ भी हर शख़्स यहाँ लाइन में खड़ा है। चावल लेने की लाइन, आटा खरीदने की लाइन और यहां तक कि कोठे के अन्दर जाने की लाइन। और अगर कोई भी शख़्स इस लाइन को खराब करने की कोशिश करता है तो लोग एहतजाज़ करते हैं। लगता है कि लाइन में खड़े होते-होते लोग खुद लाइन बन गये हैं। एक-दूसरे से आगे निकलने में मसरूफ हैं और उनके अपने घरों में सौदागर उनकी बेटियों के जिस्मों के एवज़ कपड़े बेच रहे हैं।

वह आदमी फिर ज़ोर से चीखा।

''एक आदमी सिर्फ एक आदमी चाहिए जो सब कुछ बदल सकता है।''

मगर किसी को भी उस की बात सुनने की फुर्सत ही नहीं है। सुबह लोग बाहर आते हैं तो उन के चेहरों पर एक अजीब-सी थकान होती है। लगता है कि उन्होंने बेवजह जिस्मों को उठाया हुआ है और वह अपने ही जिस्मों से परेशान हैं।

मगर एक दिन उसने बात आगे बढ़ाई और ज़ोर से कहने लगा :-

''सिर्फ एक आदमी। हाँ सिर्फ एक आदमी इस सारे निज़ाम को बदल सकता है। यह माहौल पैदा कर सकता है कि रात को आराम से सोयें और सुबह उन के जिस्म पूरे हों।''

साराबाई की एक खोली है और अन्दर एक चिलम है लोग बारी-बारी अन्दर जाते हैं चिलम से कश लगा कर आराम से सो जाते हैं और फिर सुबह उठ कर अपने-अपने काम की तरफ चले जाते हैं।

साराबाई सिर्फ पाँच रुपये लेती है, लोग खुशी-खुशी वहाँ आते हैं।

साराबाई कहाँ से आई, किसी को मालूम नहीं। मगर इतना सब जानते हैं कि सदियों से यह खोली कायम है। लोग तो यहाँ तक बातें करते हैं कि यह औरत साराबाइ नहीं है असल साराबाई तो मर गई है। लाइन में लगते हुए यह लोग बातें करते हैं और फिर आदमी इस खोली के अन्दर चला जाता है और गहरी नींद सो जाता है, चाहे वह भूखा हो या नंगा, इस बात का यहाँ कोई फर्क नहीं है।

फिर साराबाई के हाँ लोग इस लिए भी आना पसंद करते हैं क्योंकि यहाँ पर उन के जिस्म महफूज़ रहते हैं, उनकी चोरी नहीं होती।

लोग समझते हैं कि अगर तमाम ज़िन्दगी उनके जिस्म पूरे रहें, मुकम्मल रहें तो यह बहुत बड़ी बात है। असल में एक शख़्स जब एक जलसे में गया तो अपने कान खो बैठा। एक ने हस्पताल में रात गुज़ारी तो अपना गुर्दा खो बैठा। एक होटल में गया तो अपनी आँखें चोरी करा बैठा। इसलिए अब ग़रीब और मजबूर लोगों के इलावा बड़े-बड़े लोग भी अपना भेस बदल कर यहाँ आना शुरू हो गये हैं क्योंकि यहाँ जिस्म पूरे रहते हैं। उनके कपड़े उतार लिए गये हैं और इनकी भूख छिन चुकी है। अब सिर्फ जिस्म पूरे रहें यही ग़नीमत है।

जिस शख़्स के गुर्दे चोरी हो गये थे, उस ने पुलिस में रिपोर्ट भी लिखाई थी मगर जवाब मिला था यह कहाँ से बरामद किये जायें, और हो सकता है कि तुम अस्पताल में जाने से पहले उन्हें घर में रख आये हो। फिर वह खुद ही चुप हो गया क्योंकि उससे डरता था कि पुलिस और डॉक्टर मिल कर तमाम लोगों के जिस्मों की तालाशी लेंगे और फिर हो सकता है कि कई और लोगों के गुर्दे भी चोरी हो जायें।

फिर रिश्ते भी तो यहाँ चोरी हो गये हैं। यहाँ तक बात पहुँच गई कि एक होटल में एक बहन ने अपने भाई को पहचानने से इन्कार कर दिया और रोशनी के मीनार के नीचे एक भाई को दूसरे भाई का चेहरा नज़र नहीं आया और कत्ल हो गया। बस अब तो लोग लाइन में ही खड़े हैं। हर दुकान के आगे लाइन है। पुलिस यह देखने में मसरूफ और लाला करोड़ीमल हल्दी के अन्दर मिलावट कर रहा है। गुल मोहम्मद चावल कम तोल रहा है। सुखदेव सिंह नकली दवाइयाँ बेच रहा है। लोग लाइन के चक्कर में उलझे हुए हैं, उनकी आँखें चारों तरफ यह देखने में मसरूफ हैं कि कहीं कोई लाइन तोड़ कर आगे न निकल जाये।

मगर वह ज़ोर से चीखता गया : ''सिर्फ एक आदमी, सिर्फ एक आदमी।''

एक दिन एक उस्ताद को फिल्म देखने जाना था, उसने छुट्टी जल्दी कर दी। एक लड़का दौड़ता हुआ आया और वहाँ खड़ा हो गया। यह स्कूल शाम को लगता था और देर रात को बन्द होता था। मगर छुट्टी जल्द हो जाने की बजह से वह लड़का एक सुराख करके साराबाई की खोली के अन्दर देखने लगा। उसने देखा कि चिलम पीने वाला शख़्स गिरा और बेहोश हो गया। दूसरे ने उसको बालों से पकड़ कर घसीटा और अपने लिए उसने जगह बनाई। फिर तीसरे ने दूसरे के साथ ऐसा किया, चौथे ने पांचवें के साथ। यही बात है तभी तो हर शख़्स सुबह उठते ही ज़ख़्मी होता है और परेशान होता है। बच्चे को मालूम हो गया कि बड़े-बड़े डाक्टर जिन ज़ख़्मों के इलाज नहीं कर सके इस की बजह क्या है।

वह उस बूढ़े शख़्स के पास चला गया।

उसने कहा : ''बाबा मैं भी बात समझ गया हूँ। मुझे मालूम हो गया है कि तुम क्या कहना चाहते हो।''

''हाँ भाई बोलो क्या समझ गये हो''

''यही न कि अगर आदमी पुरानी रिवायत को भूल कर दूसरे के साथ अच्छा सलूक करे, फिर दूसरा तीसरे के साथ ऐसा करेगा और तीसरा चौथे के साथ और सारा निज़ाम ठीक हो जायेगा।''

ooo

प्लॉट नं. 19, बख़्शी नगर, जम्मू (जम्मू व कश्मीर)

साईन बोर्ड

❑ योगिता यादव

लॉ के नए विद्यार्थियों के स्वागत में दी जा रही यह लॉ कॉलेज की फ्रेशर पार्टी थी। सभी लड़कियां बला की खूबसूरत लग रहीं थीं। कुछ ने ग्लैमरस दिखने की कोशिश में वेस्टर्न कपड़ों का चुनाव किया था। लड़कियों के बीच छितरा हुआ लड़कों का झुंड बता रहा था कि वे अपनी कोशिश में कामयाब भी हुईं हैं।

इन सबसे दूर कलाई तक ढकी बाजू का कुर्ता और चूड़ीदार पायजामी पहने एक कोने में कुछ सहेलियों के साथ खड़ी थी शबनम।

शबनम सईद।

छात्र नेताओं की अनौपचारिक भाषणबाजी के बाद शुरू हुआ नए विद्यार्थियों का इंट्रो राउंड। इसमें सभी नए विद्यार्थियों को बारी-बारी आकर अपना नाम, अपनी पसंद आदि बताकर कोई एक परफोर्मेंस देनी थी। किसी ने चुटकुले सुनाए, तो किसी ने लेटेस्ट डांस की प्रस्तुति की।

''अब आ रहीं हैं शबनम सईद'',

''देखें क्या कमाल दिखातीं हैं मिस सईद ?'', एंकर ने घोषणा की।

''ओ.... तो शबनम नाम है, मैंने कहा था न कि लड़की मुसलमान है।''

कुछ विद्यार्थियों ने आपस में. टिप्पणी की। मद्धिम स्वर में ऐसी ही और भी कई टिप्पणियां हॉल में हो रहीं थीं।

शबनम पूरे आत्मविश्वास के साथ मंच पर आई,

''डांस, वी वॉन्ट डांस''

अब हॉल में मौजूद लड़के-लड़कियों ने डांस की फरमाईश कर डाली।

बड़े सलीके से शबनम ने इस फरमाईश को ठुकरा दिया। बड़ी-बड़ी आंखों के ऊपर की लंबी काली पलकों में वे सब इस कदर उलझ चुके थे कि उन्हें इस ठोकर का अहसास ही न हुआ।

जब तक हो पाता तब तक शबनम ने अपनी ओर से गाना सुनाने की अनुमति चाही।

''इफ़ यू डोंट माइंड, आई वुड लाइक टू सिंग''

''यस ऑफकोर्स,'' ''वाय नॉट'' की गूंज हॉल में होने लगी। गूंज को विराम तब लगा जब शबनम ने गाना शुरू किया....

''ऐ प्यार तेरी पहली नज़र को सलाम.....''

सलाम....,

ऐ प्यार तेरी पहली नज़र को सलाम....''

o

शबनम की खूबसूरती और फर्स्ट इम्प्रेशन का ही कमाल था कि वह उस पार्टी में 'मिस फ्रेशर' चुनी गई और पार्टी के बाद 'सलाम गर्ल' के नाम से कॉलेज में मशहूर हो गई। उस पार्टी में एंकर की भूमिका में नज़र आने वाला अंतिम वर्ष का छात्र साहिल सिंह जब भी शबनम को देखता तो कॉलेज प्रसिद्ध 'हाय' या 'हैलो' की बजाए सलाम कहता। शबनम भी सलाम का जवाब मुस्कुरा कर देती।

मुलाकातों का सिलसिला चल पड़ा अब दिलों में वादों के अंकुर फूटने लगे थे। अंतिम वर्ष का छात्र होने के नाते साहिल ने शबनम की बहुत मदद की। फिर चाहे परीक्षाओं की तैयारी हो या फिर वाइवा की जानकारी।

दोनों वकालत की पढ़ाई कर रहे थे इसलिए अपने-आप को बुद्धिजीवी मानते हुए फालतू बातों से परहेज ही किया करते थे।

साहिल सीनियर होने की बजह से खुद को ज़्यादा समझदार मानता था और शबनम को लगता था कि 'क्योंकि वह लड़की है इसलिए ज़्यादा मेच्योर है।'

दो समझदारों की आपसी समझ बढ़ती गई और वे एक-दूसरे को खुद का पूरक मानने लगे। सलाम गर्ल और स्मार्ट ब्वॉय की यह जोड़ी कुछ विद्यार्थियों को खासी आकर्षित करती थी। इसलिए उनमें उन्हें बॉलीवुड की कई सफल जोड़ियों के साक्षात् दर्शन हुआ करते थे।

शबनम और साहिल भी कॉलेज के इस सामान्य ज्ञान से अपरिचित नहीं थे। इसलिए उनके बारे में जब भी कोई नई जानकारी कॉलेज कैंपस में उदित होती, तो साहिल का चेहरा सूर्य के समान और शबनम सुबह की कुंआरी धूप की तरह चमकने लगती। इस सब के बीच एक साल कब बीत गया पता ही नहीं चला।

o

आज कॉलेज में एक और पार्टी थी। पर आज उमंग, उत्साह की जगह निराशा और उदासी ने ले ली थी। शबनम का दिल एक-एक पल में कई-कई बार धड़क रहा था क्योंकि यह अंतिम वर्ष के छात्रों की फेयरवेल पार्टी थी। अंतिम वर्ष का छात्र यानी साहिल सिंह....बस और कुछ नहीं।

पार्टी में जैसे -

शबनम का बहुत कुछ छूटने लगा था।

एक मौसम जो खुशनुमा था, वह बीतने लगा था।

शबनम की आंखों से आज बेशकीमती उपहार झड़ रहे थे। साहिल का मन हुआ कि वह बढ़कर इन्हें संभाल ले, पर क्या करता ऐसे बहुत से उपहारों के गुबार उसके दिल में भी बनने लगे थे। जो पुरुष होने के गुमान में आंखों का रास्ता नहीं ले पा रहे थे।

बिछुड़ने की मजबूरी ने दोनों के बीच का प्यार कई गुना बढ़ा दिया था। शबनम को लगा कि कहीं कॉलेज के अकादमिक वर्ष की तरह साहिल के दिल का प्यार भी न खत्म हो जाए.....।

०

पर ऐसा नहीं हुआ। साहिल एक वकील के अंडर काम करने लगा था और शबनम का यह लॉ का दूसरा वर्ष था। प्यार अब भी बरकरार था। सबूत यह था कि शबनम अब क्लास 'बंक' करने लगी थी और साहिल को अक्सर अपने सीनियर से लेट आने और कभी-कभी न आने पर डांट पड़ने लगी थी।

दोनों अब भी अपने-आप को बुद्धिजीवी मानते थे। इसलिए इस दशा पर विराम लगाने की मंशा से दोनों ने तय किया कि अब उन्हें शादी कर लेनी चाहिए।

शादी के लिए मियां और बीबी दोनों ही थे राजी।

पर सवाल था कि पंडित आए या काज़ी।

सलाम लेते और देते हुए भी वे दोनों भूले नहीं थे कि शबनम 'सईद' है और साहिल 'सिंह'।

घरवालों का खून खोलने के लिए दोनों का नाम ही काफी था। इस शादी के लिए परिवार वालों की अनुमति न मिलनी थी और न ही मिली।

दोस्त पहले भी तैयार थे और घर वालों के इन्कार करने के बाद अब और ज़्यादा तैयार हो गए थे। अक्सर होता भी है जिस फल को खाने की समाज वर्जना करता है उसे चखने को दोस्त सबसे ज़्यादा उत्साहित करते हैं।

फिर भी शादी करना आसान नहीं था।

क्योंकि समाज की आलोचना करना आसान है पर उसके समानांतर अपनी मर्जी का समाज खड़ा करना बहुत मुश्किल। दोस्तों की मंडली में बैठे हुए इस समाज की परिकल्पना जितनी आसान होती है उससे कही ज़्यादा मुश्किल होती है इस समाज की परिघटना। यह मानव मन है। हताश होने के बावजूद आशा की कोई-न-कोई किरण कहीं-न-कहीं से खोज ही लेता है। सामान्य परिस्थितियों में जो लोग अनावश्यक लगते हैं वही आपात स्थिति में ईश्वर से जान पड़ते हैं। आशा की उसी किरण के सहारे साहिल को अपने एक परिचित की याद आई।

''अंतर्जातीय विवाह पर बड़ा ओजपूर्ण भाषण दिया था उन्होंने, वो ज़रूर मेरी मदद करेंगे।''

पर वहां शबनम को ले जाना ठीक नहीं है। कहीं नाराज ही न हो जाए...''

इसलिए साहिल अकेला ही उनके पास पहुँच गया...

०

भैया मैं एक परेशानी में हूँ...

'कहो क्या बात है ?'

'मुझे समझ नहीं आ रहा मैं ठीक कर रहा हूं या गलत?'

'ह्मम....'

'मेरे साथ ही लॉ कर रही थी, मेरी जूनियर है'

'ह्मम....'

'हम शादी करना चाहते हैं'

'ह्मम....'

'घरवाले नहीं मान रहे'

'तुम्हारी क्या इच्छा है ?'

'मेरी इच्छा वही है जो....'

'क्या नाम है लड़की का ?'

'जी, शबनम। शबनम सईद।'

'क्या ? पूरे शहर में तुम्हें कोई और लड़की नहीं मिली।' साहिल को जो ईश्वर से जान पड़ रहे थे उन भैया जी का चेहरा दैत्यों की भांति आग उगलने लगा।

'पर भैया आप तो....'

'हम अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दे रहे हैं ताकि तुम जैसे युवा भटककर दूसरे धर्म में न जाएं...और तुम...।'

'पर भैया....'

'पर वर कुछ नहीं। क्या धर्मांतरण करोगे ?'

'क्या ज़रूरी है ? अगर ज़रूरी है तो....'

'नालायक! तुम जैसों के कारण ही हम सदियों से अपमान झेलते आए हैं। अगर रगों में एक राजपूत का खून है तो उसे अपने यहां लाओ। क्या कर सकोगे ऐसा ?'

'हमें इस सबसे फर्क नहीं पड़ता। फिर भी कोशिश करूंगा।' साहिल ने अपने प्रेम को अमर प्रेम साबित करते हुए मिसाल देनी चाही।

'अगर कर सकने की क्षमता है तो बताना, मैं काका जी से बात करूंगा।'

०

बहुत कम समय और उससे भी कम शब्दों में समाज का एक बहुत बड़ा पृष्ठ साहिल के सामने खुला। जिसकी चर्चा स्कूली पढ़ाई में तो कभी हुई ही नहीं थी, लॉ में भी इसका बहुत ज़्यादा वर्णन साहिल ने नहीं पाया था।

पर उसे याद आया कि हमारे कानून में भी तो दूसरे धर्म में शादी करने की अनुमति नहीं है।

क्या प्रेम करते वक़्त उसे धर्म और जाति के बारे में सोच लेना चाहिए था? अगर सोच लेता तो क्या प्रेम कर पाता....?

पर क्या ज़रूरी है शादी करना, हम बिना शादी के भी तो.....पर नहीं....कहीं तो ठहरना ही होगा.....

सवाल बहुत सारे थे....

०

साहिल अगले दिन फिर उन्हीं सज्जन के पास पहुंचा...

''भैया प्रणाम''

(साहिल को पता था कि भैया गुड मॉर्निंग से चिढ़ जाते हैं। इसलिए यहां वह प्रणाम ही किया करता था।)

'हां, मैंने काका जी से तुम्हारे बारे में बात की थी। उन्होंने कहा है कि शबनम हमारी बेटी जैसी है। हम नहीं कहते कि हमारी बेटियों को यहां-वहां परेशान होना पड़ा। कल उसे यहां ले आना अपने साथ।'

कुछ लोगों के क्रोध और प्रेम की लगाम भी उनके वरिष्ठों के हाथों में होती है। भैया जी का उस व्क़्त का क्रोध और इस व्क़्त का प्रेम इसी का प्रमाण का था।

'सच......क्या वह मान गए...'

'हां...मानते क्यों नहीं....आखिर तुम जो इतना बड़ा कार्य करने जा रहे हो।'

'मैं कल ही उसे यहां ले आऊंगा....फिर ?'

'फिर की तुम चिंता मत करो। वह सब हम पर छोड़ दो। हम करेंगे लड़की का कन्यादान।'

'भैया...भैया, आप कितने अच्छे है। आपका यह उपकार मैं जिंदगी-भर नहीं भूलूंगा। आपने तो मुझे मेरी जिंदगी ही लौटा दी....।'

खुशी में पंख बने साहिल के कदम रुकते ही नहीं थे। वह बार-बार काका जी के प्रति नतमस्तक हो रहा था।

अपनी समस्या को गंभीर बताते हुए साहिल ने शबनम को भैया जी और काका जी के पास जाने के लिए तैयार कर लिया। शुरू की कुछ मुलाकातों में तो शबनम का वहां एक पल भी ठहरने का मन नहीं किया, लेकिन प्यार करती थी और उसे अंजाम तक पहुँचाना चाहती थी इसलिए जैसा साहिल कहता गया वह करती गई....।

o

शबनम जानती थी कि उसके मम्मी-पापा को शहर-भर से उसके और साहिल के बारे में भनक लगने लगी है। पर वह क्या करती... उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। वह वही कर रही थी जो साहिल उसे करने को रह रहा था। और इस बारे में साहिल कुछ कह ही नहीं रहा था। सवाल यहां भी बहुत सारे थे...।

उसने जैसे-तैसे हिम्मत जुटाकर अपनी बड़ी बहन की मार्फत मम्मी-पापा के सामने अपने और साहिल के रिश्ते के बारे में बात की।

मानो महायुद्ध से पहले शांति का अंतिम संदेश भेजा जा रहा हो।

इस शांति संदेश का जवाब कुछ यूं मिला,

'खबरदार जो एक सांस भी बाहर निकाली। तुम्हारी जुबान पर भी उस काफिर का नाम

आना गुनाह है। हमनें तुम्हें इतने लाड़-प्यार से पाला है। और उसका सिला ये... कि हमें शहर-भर में तुम्हारी खबरें सुनने को मिल रहीं हैं।

उफ्फ् कितनी संगदिल और बेरहम है ये दुनिया। हर बात के कितने मतलब निकाल लेती है। असल बात समझने की कोशिश ही नहीं करती.... मेरे खुदा तू ही बता अब मैं क्या करूं...... ?

क्या वही....पर क्या तब अम्मी, अब्बू की बदनामी नहीं होगी ?

या अल्लाह! हमारी सात पुश्तों पर दाग लग जाएगा...।

नहीं मुझे कुछ नहीं सूझ रहा...

o

पांच दिन बाद शबनम और साहिल की शादी के तमाम इंतजाम किए जा चुके थे। शादी शहर से बाहर एक मंदिर में थी। शादी के बाद एक फाइव स्टार होटल में पार्टी ....

दोनों ने अपने सभी दोस्तों को वहीं आने का निमंत्रण दिया था। पर इस सबसे पहले शबनम को कुछ तैयारियां करनी थीं...

मसलन

अपने-आप को संभालना था
अपने-आप को भूलना था
स्वाभिमान को मारना था
उन लोगों की हर बात को मानना था

और

उसे अब शीतल बन जाना था।

इन सब में उसे ध्यान ही नहीं रहा कि उसके सेकेंड ईयर के एग्ज़ाम आने ही वाले हैं।

o

वह बाहर से बहुत खुश थी कि उसका प्यार अपने अंजाम तक पहुंच रहा है।

पर भीतर से वह अकेली हो गई थी।

पता नहीं क्यों, सारे कर्मकांड के दौरान उसे एक बार भी नहीं लगा कि उसके जिस्म में जान बाकी है।

पार्टी बहुत अच्छी रही। सारे दोस्तों का साथ पाकर वह एक बार के लिए अपने सारे दुख भूल गई। साहिल भी।

०

इस नए समाज ने हाथों-हाथ उसका स्वागत किया। कई जगह उसे प्यार और बलिदान की मिसाल बताकर पेश किया गया।

'हैप्पी मैरिड लाइफ' शुरू हो चुकी थी।

काका जी ने ही दोनों के रहने के लिए शहर से दूर दो कमरों का एक मकान किराए पर ले दिया था। पर इस घर में शबनम को आने की अनुमति नहीं थी। यहां सिर्फ शीतल रह सकती थी। सिर्फ शीतल। साहिल की शीतल। शबनम की लाश पर पैदा हुई शीतल।

शबनम के मर जाने पर उस घर में भी मातम मनाया जा चुका था।

साहिल की प्रैक्टिस में भी काका जी और भैया जी खूब मदद कर रहे थे। इसलिए शीतल उन्हें अपने अपनों की तरह सम्मान देने लगी थी।

०

और एक दिन ईद आई...

हर साल ईद पर आने वाली खुशियों को इस बार शबनम नहीं मिली न अम्मी ने सिवइयों की मिठास दी और न अब्बू ने ईदी।

पिछली रात जब शीतल बिस्तर पर लेटी थी तो उसने देखा था कि कोई उसकी खिड़की से झांक रहा था। एक बार के लिए वह डर गई... साहिल पास में ही लेटा था। पर गहरी नींद में था। उसने डर के मारे आंखें बंद कर लीं और साहिल से और सटकर सो गई। थोड़ी देर बाद उसकी आंख फिर खुली। वह परछाई अब भी खिड़की से झांक रही थी। इस बार उसका दुपट्टा लहरा रहा था।

शायद कोई औरत है, पर वो यहां क्यों झांक रही है ? होते हैं कुछ गंदे लोग... उन्हें इस तरह नवविवाहितों के कमरे में झांकने में ही..... शीतल हिम्मत करके उठी।

धीरे-धीरे कदमों से खिड़की की तरफ गई। अंधेरे में कुछ भी साफ-साफ दिखाई नहीं दे रहा था।

चूड़ीदार पायजामी, कलाई तक ढकी बाजुओं वाला कुर्ता, लहराता हुआ दुपट्टा... ये तो ...शबनम...उस परछाई का चेहरा चांद में बदल गया। और परछाई चांदनी की तरह शीतल के सामने छिटक गई।

चांद की इस सुंदर रात में शबनम कहां से आ गई ? उसे तो यहां आना ही नहीं चाहिए था...

ये तो ईद का चांद है! इसका मतलब रोज़े पूरे हो गए। पर मैंने तो इस बार....।

कुछ भी हो कल जरूर जाऊंगी ईद की नमाज़ अता करने।

ये परविश के वो निशान थे जो शुद्धियों के बाद भी मिट नहीं पाए थे। आस्था की कुछ लकीरें हमारे जन्मने से लेकर मरने तक हमारे साथ रहती हैं। माहौल सकारात्मक हो तो वह प्रफुल्लित होती हैं और अगर नकारात्मक हो तो बरगद की जड़ों की भांति भीतर-ही-भीतर फैला करती हैं।

''पर क्या साहिल.... ?''

नहीं, नहीं वो क्यों मना करेंगे ? भला उन्हें इससे क्या ऐतराज ? मस्तिष्क को मथते हुए शादी वाली रात के तमाम वायदे शीतल को एक बार फिर से याद हो आए।

पर आज की सुबह वैसी नहीं थी जैसी तस्वीर उसने बनाई थी।

०

साल के भीतर ही शीतल की गोद भरी और वह और ज़्यादा बिजी हो गई। साहिल की प्रैक्टिस अच्छी चलने लगी थी। इसलिए वह और खुश रहने लगी थी। कभी-कभी ख़्याल आता कि उसने पढ़ाई बीच में ही न छोड़ दी होती तो वह भी आज साहिल की तरह जानी-मानी वकील होती।

पर क्या हुआ जो लॉ पूरा नहीं हो पाया। वह कुछ-न-कुछ तो कर ही सकती है। आखिर वह ग्रेजुएट है। और कितनी ही लड़कियां ऐसी हैं जो ग्रेजुएशन के बाद ही अच्छी नौकरी कर रही हैं।

शीतल हर रोज़ अखबार में नौकरी के विज्ञापन देखती और संभावित नौकरी के समयानुसार शेष बचे समय में घर के काम का शेड्यूल बनाती। पर जब बारी एप्लीकेशन फॉर्म भरने की आती तो वह परेशान हो जाती। वह शीतल सिंह के नाम से फॉर्म भरती मगर उसके पास कुछ भी तो नहीं था जिससे शीतल सिंह पढ़ी-लिखी साबित होती। शीतल सिंह की डेट ऑफ बर्थ भी तो उसे ठीक से याद नहीं थी।

एक बार साहिल ने कुछ कानूनी दांवपेच समझाए थे जिनके बाद वह शबनम के सर्टिफिकेट शीतल के बायो डाटा में इस्तेमाल कर सकती थी। मगर मन न माना। सारे दांव पेच एक तरफ और मन की मनाही एक तरफ। कर लो क्या करोगे।

शेष बचा अवसाद और घोर निराशा

''क्या मैं किसी काबिल नहीं ? दोनों में से एक भी जिंदगी मेरे काम नहीं आएगी।''

नौकरी नहीं तो क्या हुआ मैं कुछ और कर सकती हूं। कोई रेस्टोरेंट, कोई कैफेटेरिया

या फिर कोई बुटीक। हां बुटीक ठीक रहेगा। पर उसे शुरू करने के लिए कुछ तो पैसा चाहिए ही..... 'साहिल के पास तो वैसे ही.....'

जब कुछ न हो सका तो उसने बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया। अपना खर्चा भी निकलेगा और बुटीक के लिए पैसे भी जमा हो जाएंगे।

०

पैसे जमा करना मुश्किल तो था पर इतना मुश्किल होगा इसका पहले उसे अंदाज़ा नहीं था। फिर भी उसकी इच्छा उसका संबल बनी। महीनों बीत जाने के बाद उसकी इच्छा लगने लगी कि पूरी हो जाएगी और उसने अपने बुटीक के ख़्वाब बुनने शुरू कर दिए।

ख़्वाब बुनते वक़्त साहिल हमेशा उसके साथ होता था, पर उनकी परिघटना पता नहीं कैसी होती थी, मायूस-सी.... कड़म के बासी पत्तों जैसी.... ओस की एक बूंद भी नहीं.....

एक दिन ब्रेकफास्ट टेबल पर बैठे हुए उसने शीतल से सवाल किया, शीतल अब तो तुमने पैसे भी जमा कर लिए हैं। कल जाकर हम तुम्हारे बुटीक के लिए दुकान पसंद कर आएंगे। पर तुमने सोचा है कि तुम उस बुटीक का क्या नाम रखोगी ?

'इस बारे में तो मैंने कभी सोचा ही नहीं। पर हां क्या नाम रखूंगी मैं उसका ?'

'कोई अच्छा सा नाम होना चाहिए....'

'जैसे...... ?'

'जो तुम्हें बड़ा अपना-सा लगे ....'

अच्छा चलो मैं चलता हूं मुझे देरी हो रही है। तुम सोचना क्या नाम होगा तुम्हारे बुटीक का ?' नैपकिन से हाथ पोंछते हुए साहिल कुर्सी से उठा और कोर्ट के लिए निकल पड़ा।

०

इधर शीतल बुटीक के नाम के बारे में सोचने लगी.....

क्या नाम होगा ? साहिल ने कहा था जो मुझे बड़ा अपना-सा लगे।

कौन है मेरा अपना

साहिल, वो तो है ही

मेरी बेटी हां वो भी है

पर.....पर कुछ और होना चाहिए

जिसका अहसास ही मेरे ज़हन से निकले

क्या हो सकता है ऐसा ?

मेरा प्यारा ? मेरी पसंद ? मेरी अना ?

हां अना

मेरी अना ही तो है जिसके लिए मैंने खुद मेहनत की और अपने पैरों पर खड़ी होने जा रही हूँ।

अना, अना बुटीक

यही नाम होगा मेरे बुटीक का।

साहिल सुनेंगे तो कितने खुश होंगे।

०

साहिल घर लौटा तो शीतल की खुशी का ठिकाना न था। शीतल ने खुशी से बाहें फैलाए साहिल का स्वागत किया। अपनी दोनों बाहें उसके गले में डालते हुए वह लगभग झूल-सी गई।

बताओ क्या खाओगे खाने में ? आज सब कुछ आपकी पसंद का बनेगा।

क्या बात है बहुत खुश नज़र आ रही हो।

खुश तो होऊंगी ही इतना बड़ा काम जो किया है आज।

अरे वाह, ज़रा हम भी तो सुनें ऐसा क्या कमाल कर दिया हमारी 'मैडम' ने।

याद कीजिए सुबह आपने क्या काम सौंपा था हमें ?

तुम्हारा खिला हुआ चेहरा देखकर मैं तो सब कुछ भूल गया। अब तुम ही बताओ प्लीज़।

महिलाओं को टरकाते समय अक्सर पुरुष जो हल्के-फुल्के सवाल उन्हें उलझाने के लिए पूछ लेते हैं, महिलाएं उन्हें भी बड़ी गंभीरता से ले लेती हैं। और पुरुष की मन:स्थिति इसके ठीक उलट। नतीजतन साहिल को भी बहुत ज़्यादा कुछ याद नहीं था।

मैंने अपने बुटीक का नाम ढूंढ़ लिया है।

सच क्या नाम सोचा है।

आपने कहा था न कुछ ऐसा होना चाहिए जो बिल्कुल मेरा अपना-सा हो।

हां, कहा तो था।

तो अंदाज़ा लगाइए क्या हो सकता है ?

अंदाज़ा तो लग रहा है पर तुम बताओगी तो ज़्यादा खुशी होगी ?

अना, मेरी अना, अना बुटीक।

और सुनो हम अपने बुटीक का उद्‌घाटन काका जी से ही करवाएंगे। कितनी मदद की है उन्होंने हमारी।

अना.....! ये क्या नाम हुआ ? कहते, कहते साहिल ने शीतल की खुशी का बिस्तरा गोल कर दिया।

अना यानी कि मेरी अना, सेल्फ रेस्पेक्ट।

ओह् तो तुम सेल्फ रेस्पेक्ट का झंडा गाढ़ना चाहती हो ? और ये अना, टना नाम रखा न, तो आ गए काका जी तुम्हारे बुटीक का उद्‌घाटन करने। क्या तुम जानती नहीं उन्हें ऐसे नाम से भी चिढ़ है ?

चिढ़ है ! तो फिर मैं...... ? और फिर इसमें झंडा गाढ़ने वाली कौन-सी बात हो गई ?

तुम शीतल हो शीतल।

लेकिन मैं तो शबनम....

ठीक है तुम शबनम भी थी पर अब तुम शीतल हो, देखो बात की व्यवहारिकता को समझो। नाम से भला तुम्हें क्या फर्क पड़ता है। नीना, मीना कुछ भी रख लो... और तुम जानती हो काका जी के कितने एहसान हैं हम पर उन्होंने ही तो हमारे प्यार को .... कहते हुए साहिल शीतल को अपने पास ले आया।

'ईना, मीना, टीना....और मेरी अना साहिल के लिए सब कुछ एक बराबर है।' मनों की दूरी का यह अहसास शबनम ने तब किया जब साहिल ने विवाद का अंत करने की कोशिश में उसे अपने सीने से बिल्कुल सटा लिया था।

साहिल की कोई भी बात मानने का इस बार शबनम का मन न हुआ। मन ने फिर पटखनी दी। बुटीक का नाम उसे आत्म स्वाभिमान का प्रतीक लगने लगा था। और वह उस प्रतीक को आकार लेते देखना चाहती थी।

बुटीक और बुटीक का उद्‌घाटन उसके लिए गौण होते जा रहे थे।

परिस्थितियां कितनी जल्दी बदल जाती हैं। आज से ढाई वर्ष पहले जब उसकी गोद में नन्ही बेटी आई थी तब उसे देखकर उसके लिए उसका नाम गौण हो गया था और अब जब बुटीक की बारी है तो उसके लिए नाम ही प्रमुख हो गया और बुटीक गौण ? यह सजीव और निर्जीव के बीच का भेद है या फिर प्रतिभिज्ञा का!

सोचने लगी तुम्हारे धार्मिक तुष्टिकरण से मैं कब तक संतुष्ट होऊं।

आखिर मेरा भी कोई बजूद है। मेरा बजूद कब तक समाज सुधार का उदाहरण बनकर पेश होता रहे। मैं जिऊंगी साधारण जिंदगी। आम औरत की आम जिंदगी।

एक तरफ स्वाभिमान का प्रतीक था, दूसरी तरफ अपने प्रिय की अनिच्छा का सम्मान।

स्वाभिमानी स्त्री भी आखिर होती तो स्त्री ही है। फिर अचानक एक मध्यमार्गी विचार ने उसके मस्तिष्क में प्रवेश किया, क्या बिना साईड बोर्ड के बुटीक नहीं चल सकता......

अब बुटीक किसी दुकान में नहीं इसी घर के एक कमरे में खुलेगा। बजट भी घटेगा और विवाद भी।

बुटीक की तैयारियां होने लगीं, मास्टर ढूंढ़ लिए गए, मशीनें खरीद ली गईं..... देखते ही देखते उस घर के ही एक कमरे में ग्राहकों का तांता लगने लगा। शीतल ने एक तरफ की दीवार पर लकड़ी के रैक बनवा लिए और दूसरी तरफ हेंगर टांग दिए। बिना सिले कपड़े रैक में रहा करते और तैयार कपड़े हेंगर में इठलाने लगे।

शीतल का आत्मनिर्भरता का सपना पूरा होकर दिनों-दिन बढ़ने लगा था। अब वह साहिल के लिए बुटीक बंद होने के बाद ही समय निकाल पाती थी। ऐसे में उनकी कोई भी बात अब उसे न तो बहुत ज़्यादा हर्षाती थी और न ही बहुत ज़्यादा चुभती थी। वह अपने काम में मसरूफ थी। इधर काका जी समाज-सुधार के निमित्त डोडा प्रवास पर थे।

शीतल के बुटीक से तैयार कपड़ों के चर्चे दूर-दूर तक थे। काम बढ़ता देख अपने घर के साथ लगते एक और घर के दो कमरे और खरीद लिए थे। एक कमरे से शुरू हुई कपड़े सिलने की दुकान तीन कमरों के शानदार बुटीक में तब्दील हो चुकी थी। हेंगर पर टंगे कपड़े अब केशहीन डमियों ने पहन लिए थे।

इस व्यस्तता में कोई पूछता ही नहीं था कि इस बुटीक पर साईन बोर्ड क्यों नहीं है?

ooo

चिराग़ जल उठे

❑ निर्मला सिंह

ज्यों-ज्यों नैनीताल नज़दीक आता जा रहा था, कार ऊपर बढ़ती जा रही थी, सान्वी के दिल में अपने बेटे की यादें बढ़ती जा रही थीं। खिड़की से आते हुए हवा के झोंकों से दो साल पहले बीती घटनायें आँधी में उड़ते हुए पत्तों-सी उनके सामने घूमने लगीं। दो गाँव पर अभिषेक ने कार रोक कर पूछा-

'सान्वी चाय पियोगी क्या ?'

सान्वी कुछ नहीं बोली! बोलती भी कैसे वह तो वर्तमान में थी ही नहीं।

''मम्मी चैरी बहुत टेस्टी है।''

''अंश बेटा और लोगे क्या ?''

बेटे ने हाँ में गर्दन हिला दी थी, लेकिन अभिषेक ने और खरीदने के लिए मना कर दिया था, हाँ बेटी दिव्यांशी ने अपने दोने में से कुछ चैरी अंश को दे दी थी।

दुबारा अभिषेक के पूछने पर सान्वी अतीत की सुरंग से बाहर निकल पर वर्तमान में आई।

''अरे भई मैंने पूछा चाय पियोगी क्या ? पता नहीं कहां हो ? जबाव ही नहीं दे रही हो।''
''हाँ... हाँ पियूंगी'' सान्वी ने धीरे से कहा।

और कार से निकल कर सब लोग छोटे से रैस्टोरेन्ट के बाहर बैठ कर चाय पीने लगे, साथ में अभिषेक ने गरम-गरम पकौड़े भी मंगाये थे, वह भी खाये गये। अभिषेक ने खूब शौक से खाये सान्वी ने कम खाये क्योंकि बार-बार उसे बेटे अंश की याद सता रही थी।

यहीं पर बैठ कर अंश ने उन लोगों के साथ पकौड़े खाये थे, खूब हँस-हँसकर खेला था, वह खिलखिलाहट, वह मन में उतर जाने वाली मुस्कुराहट सान्वी कैसे भूल सकती है? पता नहीं कहाँ होगा मेरा बच्चा? कैसा होगा ? वह तो बचपन ही भूल गया होगा, एक लदी हुई डाल की तरह जुल्मों की मार से टूट-सा गया होगा। सान्वी जहाँ भी जाती अपने आँसुओं की नदी को बांध नहीं पाती, बहुत कोशिश करते अभिषेक कि सान्वी अंश को भूल जाये, लेकिन वह हमेशा सिर से पाँव तक यादों में तिल-मिलाती रहती, वह पूरी तरह टूट-सी चुकी है......। उसे सामान्य स्थिति में लाने के लिये ही डॉक्टर के कहने पर अभिषेक नैनीताल आये, परन्तु सान्वी फिर भी खुश नहीं हो पा रही थी नैनीताल से पहले हनुमानगढ़ी जाने की सान्वी ने जिद्द की थी, तब अभिषेक कार

ले गये। रास्ते-भर सान्वी चुप रही, कभी जोक सुनाकर तो कभी 'वह कौन थी' पिक्चर की शूटिंग हनुमानगढ़ी में हुई थी बताकर अभिषेक सान्वी को बहलाना चाह रहे थे।

लेकिन सान्वी तो अपनी ही दुनिया में थी। सीढ़ियाँ चढ़ते हुए कहने लगी।

''सुनो यहीं पर अपना अंश खूब रोया था प्रसाद खाने के लिये तब तुमने जल्दी-जल्दी ऊपर जाकर हनुमान मंदिर में प्रसाद चढ़ाया था, फिर उसे लाकर दिया था तब कहीं जाकर वह चुप हुआ था और आगे बढ़ा था।''

''हाँ प्रसाद खाने के बाद तो वह खूब दौड़-दौड़ कर घूमा था सीता-राम के मंदिर, देवी माँ के मंदिर और नीम करोड़ी बाबा की मूर्ति सबके बड़े शौक से दर्शन किये थे उसने।'' अभिषेक ने उत्तर दिया।

''हे हनुमान जी महाराज! मेरा बेटा मुझे दिलवा दो, मैं फिर आकर आपके दर्शन करूंगी, आपके वस्त्र बनवांऊगी'' आँखे बंद करके सान्वी हनुमान जी की मूर्ति के समक्ष प्रार्थना कर रही थी, और मन-ही-मन उसने हनुमान चालीसा पढ़ा।

काफी देर तक वह मूर्ति के समक्ष करबद्ध आँखें बंद किये खड़ी रही, उसे हर पल अपनी सांस अपने कानों में बजती महसूस हो रही थी। उसका पीड़ा से डबडबाया अस्थिर मन सैंकड़ों कंधों के आसरे से भी नहीं टिक सकता था, उसे तो चाहिये था अपना बेटा, उसकी कोमल उंगलियों वाली बाँहें, जिन्हें पकड़ कर उसने चलना सिखाया था। उसकी ममता रेत में पड़ी मछली-सी तड़प रही थी, आँखे सूने वीराने जंगल-सी हो गयीं थीं।

लाख कोशिश करने के बाद भी उसकी पीड़ा, उसके दुःख की कोठरी की साँकल खोल नहीं पा रही थी। बरेली की पुलिस लगातार उसके बेटे को खोज रही है, कई समाचार पत्रों में भी उसके बेटे की फोटो छपी थी, रेडियो, दूरदर्शन में भी लगातार साल-भर तक एनाऊंस किया जाता रहा है, लेकिन दो साल हो गये उसके बेटे का कहीं पता नहीं चला।

अब तो उसकी उम्मीद, उसकी आशा गर्म तवे पर पड़ी पानी की बूंद-सी छन्न हो गयी, फिर भी उसका मन सदा कहता रहा है कि शायद मेरा अंश मुझे मिल जाये। हनुमान गढ़ से बाहर निकलते समय तो अभिषेक ने भी बेटे की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की थी। हनुमानगढ़ से निकलकर अभिषेक कार नैनीताल की ओर ले जा रहा था। हृदय से दुःखी होने के बावजूद भी वह संयमित होकर कार चला रहा था। नैनीताल में प्रवेश करने से पूर्व टोल-टैक्स दे कर अभिषेक ने सान्वी से पूछा।

''किस होटल में ठहरना है ?''

''जिसमें चाहो ठहरो, लेकिन अलका में तो ठहरना नहीं है। पिछली बार हम लोग अंश के साथ आये थे, तब वहीं ठहरे थे।'' कहते ही सान्वी की उदास, गहरी आँखों के कोर फिर गीले हो गए।

''ठीक है, वहां नहीं ठहरेंगे। सोचता हूँ, अबकी बार ग्रैन्ड होटल में ठहरते हैं जो तल्लीताल और मल्लीताल के बीच में है।''

''हाँ वह ठीक है। उस होटल के लान की रेलिंग पर खड़े होकर भी हम लोग मुसाफिरों को, झील को और ठंडी सड़क को भी बड़े आराम से देख सकते है।''

''क्यों भई, होटल में ही रहने के लिए नहीं आयें हैं, खूब घूमेंगें, माल रोड भी चलेंगे?''

''हाँ चलूँगी। जहाँ भी आप कहेंगे मैं जाऊँगी'' कह कर सान्वी शान्त हो गयी।

सान्वी के कथनानुसार अभिषेक ने अलका में रूम न लेकर ग्रैन्ड होटल में इक्कीस सौ रुपये प्रतिदिन के किराये वाला कमरा तीन दिनों के लिये बुक करा लिया। होटल के चपरासी ने कमरे में सामान रखकर, चाय के लिए पूछा।

अभिषेक ने तुरन्त ही चाय का आर्डर दे दिया। इतनी देर में चाय आई, सान्वी ने मुँह हाथ धोकर बैग में से साथ लाया हुआ नाश्ता निकाल कर पेपर प्लेट में रखा। फिर दोनों चाय के साथ लड्डू, मठरी और दालमोठ खाने लगे। मठरी खाते समय सान्वी ने रोके हुए मन के उबाल को बाहर निकाला।

''पिछली बार हम लोग आये थे तब अंश ने बड़े प्रेम से लड्डू-मठरी खाये थे, फिर बाहर रेलिंग पर खड़े होकर झील में तैरती नावें और बतखें देखकर तालियाँ बजा-बजाकर खूब खुश हुआ था। नाव में भी उसने खूब शैतानी की थी वह तो भला हो उस यात्री का जिसने साथ-साथ चलने वाली नाव से चिल्ला कर कहा था।''

''मैडम, आप अपने बेटे को पकड़ कर बैठिये, वरना यह झील में गिर जायेगा।'' और हम दोनों ने उसको बीच में बिठा लिया था, अपनी दिव्यांशी को सामने बिठा लिया था।

''खैर! उस समय तो बच गया हमारा बेटा'' फिर पता नहीं स्कूल से बाहर निकलते ही किसने किडनैप कर लिया। टैम्पो वाले ने बहुत ढूंढ़ा, टीचरों और प्रिंसिपल ने भी बहुत ढूंढ़ा, लेकिन मिला नहीं हमारा बच्चा। यह कहकर सान्वी फिर रोने लगी।

''जो होना था हो गया सान्वी। भूल जाओ सब कुछ, नहीं तो तुम पागल हो जाओगी।'' कहते हुये अभिषेक ने सान्वी को गले लगा लिया और उसे समझाने लगा।

लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है कि कोई माँ अपने बच्चे को भूल जाये। रह-रह कर बच्चे की यादें कीलों-सी ठुकती रहती हैं दिलो-दिमाग में और बेचैनी पैदा करती रहती हैं। आहत ममता पँखहीन पाँखी-सी फड़फड़ाती रहती है।

चाय-नाश्ता करने के बाद सान्वी और अभिषेक फ्रैश होकर घूमने चले गये। स्मृतियों की परछाइयां वहाँ भी पहुंच गयी। अभिषेक और सान्वी भुटे खा रहे थे, टहल रहे थे।

लेकिन सान्वी तो फिर बोल पड़ी-''अपने अंश ने कितने शौक से उस गोल घेरे में बैठ

कर भुटा खाया था।''

''हाँ! मूँगफली तो बड़े मज़े से खाई थी।''

''हाँ! मैं छील-छील कर देती रही थी और आप अंश के साथ खाते रहे थे। अंश ने कहा भी था, मम्मी पापा खुद छील लेंगे आप क्यों छील रही हो ?''

ठीक उसी समय जब सान्वी भुटा खा रही थी उसके कानों ने सुना-

''ओ माई भुटा मुझे भी दे दे'' एक बालक यही लगभग छ: वर्ष का कोढ़ियों जैसी कुर्सी पर बैठा भीख मांग रहा था। बालक की आवाज़ सान्वी को जानी-पहचानी सी लगी, वह पीछे पलटी एक भुटा खरीदा, और उस बालक को देने लगी। बालक का चेहरा हूबहू उसके अंश जैसा था, आवाज़ भी अंश जैसी थी।

लेकिन बालक के एक हाथ की कलाई की हड्डी टूटी हुई थी, बालों में साधुओं जैसी जटायें-सी बन गई थीं, देह पर न जाने कितने किलो धूल-मिट्टी जमी हुई थी। कपड़े भी फटे हुए थे। एक सान्वी ने ही नहीं कई लोगों ने उस बालक की दयनीय दशा देखकर उसे भीख दी। शायद ही कोई पर्यटक उसे भीख नहीं दे रहा था गिलट के रुपये अलग कटोरे में जमा हो रहे थे और कागज़ के रुपये अलग एक डिब्बे में जमा हो रहे थे। बालक की कुर्सी को एक अधेड़ उम्र का आदमी पकड़े हुए था यह सब बड़े ध्यान से सान्वी देख रही थी।

वैसे तो सान्वी घूम रही थी, लेकिन उसका पीड़ित मन उस बालक पर ही ठहर गया था न चाहते हुए भी वह बार-बार बालक को देख रही थी। दिल कह रहा था यह बालक उसका अंश ही है, लेकिन उसका दिमाग उस बालक की दयनीय दशा, और गंदगी देखकर स्वीकार नहीं कर रहा था लेकिन उसके दिल की सुनकर मोबाइल से उसका फोटो खींच लिया। और उस अधेड़ भिखारी के पास जाकर, उससे बातें करने लगी।

''बाबा यह कितने साल का है ?''

''मेम साब जी छ: साल का है।'' वह मन-ही-मन बुदबुदाई मेरा अंश भी छ: वर्ष का है।

''बाबा, इसके हाथों को क्या हो गया है ?''

''मेमसाब जी गिर गया था, हड्डी टूट गयी है।'' जब टूटी रुपये नहीं थे इलाज नहीं करवा सका, अब करवाऊंगा।''

''इसकी माँ कहाँ है ?''

गीली आँखों से देखता हुआ बोला-जी! वो तो मर गयी है।''

''हाय...हाय तो यह बिना माँ का है।'' करुणा में डूबा वाक्य निकला।

''हाँ मेम साहब मैं ही इसका बाप हूँ और मैं ही इसकी माँ हूँ।''

''च....च...च...हे भगवान बड़ा अभागा है यह बालक'' कह कर सान्वी वहां से हट गयी।

उसके पीछे ही अभिषेक खड़ा था। झुंझला पड़ा वह।

''-यह क्या बेसिर-पैर की बातें करती रहती हो। जो भी बालक देखती हो तुम्हारा दिल मोम-सा पिघलने लगता है। तुम्हारी इस कमज़ोरी का दुनिया नाजायज़ फायदा उठा सकती है। समझी तुम!

''कोई भी फायदा नहीं उठायेगा मेरी कमज़ोरी से।''

''अच्छा चलो अब बहुत हो गया। शाम के छः बज गये है। ऊपर मालरोड चलते है, घूमते हैं, और फिर जो तुम चाहो खरीद लेना।''

अपने अन्तर्मन के संग्राम को दिल के किसी खजाने में छिपाते हुए सान्वी ने कहा-

''ठीक है चलते हैं मालरोड लेकिन मुझे कुछ भी नहीं खरीदना।''

''कुछ नहीं खरीदना, लेकिन चलो तो।''

और दोनों मालरोड की ओर चले गये, सान्वी के कदम मालरोड की ओर बढ़ रहे थे, लेकिन दिल का पैन्डुलम भिखारी बालक पर ही टिक गया था। सान्वी का चुप रहना अभिषेक को बुरा लग रहा था। कब तक अपने को वह संयत रखता। ऊपर जाकर जब सान्वी खिलौनों की दुकान पर खड़ी हो गयी और बोली-

''सुनो अगर अंश साथ होता तब हवाई जहाज़, रेलगाड़ी या स्टीमर ज़रूर खरीदता और वह भी ऑटोमैटिक।'' जैसे लहरों की थपेड़ों से किनारे की रेत बह जाती है, इसी भांति सान्वी की बातों से अभिषेक की सहनशीलता बह चुकी थी।

वह क्रधित होकर बोला-

''यह सब क्या है ? मैं तुम्हें यहां लाया हूं घुमाने-फिराने और तुम केवल अंश की ही बातें कर रही हो। प्लीज भूल जाओ-हमारा बेटा अब नहीं मिलेगा।''

जैसे जलते अंगारों पर पैर पड़ गया हो-चिल्ला उठी सान्वी-

''मिलेगा हमारा बेटा ज़रूर मिलेगा। यह मेरा विश्वास है।''

''सान्वी से वाद-विवाद करना अभिषेक को उचित नहीं लगा, क्योंकि डॉक्टर ने कहा था उसे हमेशा खुश रखिए, झगड़ा मत करिये, बहस मत करिये।''

बस इसलिये अभिषेक सान्वी की गलत बातें भी मान लेता था।

''अच्छा...अच्छा हमारा बेटा जरूर मिलेगा।'' कह कर अभिषेक सान्वी के साथ मालरोड पर विन्डो शॉपिग करने लगा। ऐसे ही घूमते हुए शाम के आठ बज गये। अभिषेक को भूख लगने लगी। प्यार से सान्वी का हाथ पकड़ते हुए पूछा-इधर ऊपर कुछ खाना है या तल्लीताल चल कर किसी होटल में डिनर लेना है। भूख तो सान्वी को भी लग रही थी तुरन्त ही बोली-

''चलो एम्बैसी में चलकर डिनर करेंगे।''

''अच्छा मैडम! जहाँ आप कहेंगी वहीं पर डिनर होगा।''

कहकर अभिषेक सान्वी का हाथ पकड़कर तल्लीताल की ओर अपने साथ ले आए।

''मौसम बहुत अच्छा है।''

''हाँ, अच्छा तो है, न गर्मी है न सर्दी है, लेकिन मन में एक घुटन है, बेचैनी है, उदासी है।''

''वह तो सान्वी रहेगी ही, आखिरकार तुम माँ हो बच्चे की, अरे हम लोग, जीवन-भर अंश को नहीं भूल पायेंगे।''

पति-पत्नी डिनर करते रहे और बच्चे की बातें भी करते रहे। बीच में ही एक बैरा आकर पूछने लगा-

''शाब आप लोग दो साल पहले भी आये थे।''

''हाँ, आये थे।''

''तब शाब आप के साथ एक छोटा बालक और एक बच्ची भी थी।''

''हाँ थी तो, लेकिन बेटा हमारी बच्ची तो अब नानी के घर गई है, और हमारे बेटे का दो साल पहले स्कूल से ही बाहर निकलने के बाद अपहरण हो गया।''

''हाय.....हाय...शाब ये तो बोत बुरा हुआ, बड़ा प्यारा भोला-भाला बच्चा था।''

''क्या करें उसे बहुत खोजा मिला ही नहीं..बस हर समय हम दोनों को याद आता रहता है।'' कह कर अभिषेक ने गीली आँखें पोंछी और बैरे से मंगाया बिल चुकाया। सान्वी और अभिषेक ने सौंफ खाई फिर ऐम्बैसी से बाहर निकल गये।

बाहर बहुत सुहावना मौसम था, ठंडी हवा चल रही थी, एक सितारों टंका आसमान ऊपर था, दूसरा झील में, झील के पार वाली ठंडी सड़क सन्नाटे के कारण मन में एक अन्जाना भय उत्पन्न कर रही थी, बतखें किनारों पर चली गईं थीं और नावें भी मल्हारों ने बांध दी थीं। हाँ! सड़क पर खूब चहल-पहल थी। नव-दम्पत्ति जो हनीमून के लिये आये थे खूब सजे-धजे, हँसते-खिलखिलाते, हाथों में हाथ डाले धीरे-धीरे मस्ती के साथ चल रहे थे। बुजुर्ग भी हाथों में हाथ लिये घूम रहे थे लेकिन वो खुद से बेखबर अभिषेक के साथ चल रही थी। जो कुछ भी बात अभिषेक कर रहा था, बस वह हाँ...हूँ में उत्तर दे रही थी।

एक ओर तो सान्वी का दिल निराशा की खाई में गिरकर चकनाचूर हो गया काँच की भांति दूसरी ओर पता नहीं क्यों उसके दिल में उम्मीद और आशा के हज़ारों लट्टू लुप-लुप करने लगे थे।

कमरे मे पहुँच कर अभिषेक थकान के कारण नाइट सूट पहन कर लेटने के कुछ पलों बाद

सो गये, लेकिन सान्वी की आँखों के लिये नींद क्षितिज-सी अप्राप्त हो गयी थी। बार-बार उसकी आँखों के आगे भिखारी बालक का चेहरा आकर उसे सोचने के लिये विवश कर रहा था। करवटें बदल-बदल कर जब वह थक गई, तब उसने पर्स में से मोबाइल द्वारा खींचा हुआ फोटो देखा, फिर अपने साथ लायी हुई अंश की फोटो पर्स की जेब से निकाल कर देखी।

वह सोचने लगी एक ही समान नैन-नक्श, एक ही समान आवाज़ जो उसके कानों ने सुनी थी...तो...तो यह बालक मेरा अपहरण किया हुआ अंश ही है...! अरे नहीं इसका तो एक हाय टूटा हुआ है, बाल तो साधू की जटाओं जैसे हैं और रंग भी सांवला है....!

फिर सोच ने करवट ली..यह तो नहाया नहीं होगा तभी ऐसा रंग हो गया है, बालों में न जाने कब से कंघी नहीं की होगी, और कपड़े भी बदलने को नहीं मिलते होंगे। सोच के सागर में सान्वी कभी ऊपर तैर कर आ जाती थी, तो कभी नीचे गहरे डुबकी लगा लेती थी।

बस, इसी तरह सोचते हुए रात के बारह बज गये। अचानक अभिषेक की आँख खुली-सान्वी के हाथों में मोबाइल देखा और अंश की फोटो देखी....! उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि सान्वी क्या कर रही है ? उसने मोबाइल छीन कर देखा भिखारी बालक की फोटो फिर सान्वी के हाथ वाली अंश की फोटो देखो....उसे भी काफी समानता दोनों फोटों मे लगी।

अभिषेक भी बुदबुदाने लगा। ''सान्वी यह भिखारी बालक अपने अंश जैसा ही लगता है।''

''हाँ अपना अंश ही है, अंश जैसा नहीं है'' विश्वास की जंजीर में जकड़ी हुई सान्वी पुनः बोली। ''जिन हाथों को पकड़कर मैंने चलना सिखाया, जिन आँखों में मैंने काजल लगाया, जिस देह को मैंने नौ महीने अपने गर्भ में पाला, जिन होठों ने माँ-माँ कहा-वह सब मैं कैसे भूल सकती हूँ। हाँ...यह मेरा अंश ही है।''

''तो फिर क्या करें जो अपना अंश हमें मिल जाये ?''

''करना क्या है कल सुबह ही थाने जायेंगे-मोबाइल वाले भिखारी बालक की फोटो और अपने अंश की फोटो दिखायेंगे। जो कुछ भी हमारे साथ बीता है वह सब बतायेंगे हमें अंश जरूर मिल जायेगा सान्वी।'' सांत्वना देते हुए अभिषेक बोले।

सान्वी ने पर्स में से निकाल कर अंश के और फोटो भी मिलाए सभी में समानता लग रही थी। अब शक ने विश्वास का चोला पहन लिया। चेहरों पर विश्वास चाँद-सितारों की भांति चमकने लगा। और सुबह-ही-सुबह चाय-नाश्ता करके तैयार होकर, दोनों ने पुलिस थाने पहुँच कर सम्पूर्ण वृत्तान्त शुरू से आखिर तक का इंस्पेक्टर को सुनाया। पहले तो पुलिस ने टाल-मटोली की, लेकिन अभिषेक ने कुछ ही समय में इंस्पेक्टर के दिल में भी विश्वास के दीप जला दिए और ग्यारह बजे के करीब पाँच छः सिपाहियों सहित इंस्पैक्टर ने भिखारी को घेर लिया। अंश देखकर घबड़ाया फिर भिखारी से लिपट गया। लेकिन पुलिस को देखकर भिखारी के तो हाथों के तोते उड़ गए, जैसे जूड़ी बुखार में हाथ-पाँव कांपने लगते हैं, उसके भी कांप गए।

सबसे पहले भिखारी को इंस्पैक्टर ने कसकर तीन-चार डण्डे मारे, फिर दूसरे सिपाही ने हाथों को पकड़ लिया और घूंसे मारते हुए पूछा, ''सच-सच बता यह बच्चा कहाँ से उठाया है ?''

''कहीं से नहीं बाबू जी यह मेरी ही औलाद है।''

''स्याले लगती तो नहीं तेरी औलाद। तेरे मुँह पर तो मक्खियाँ भिनक रहीं है। काले कलूटे यह गोरा बच्चा तेरा कैसे हो गया ?''

''सच कहता हूँ बाबू जी इसकी माँ बोत गोरी थी।''

''क्यों क्या हो गया इसकी माँ को ?''

''शाब जी कैंसर से मर गयी।'' कहते हुए भिखारी रोने लगा।

''हरामजादे! अब तूने इसकी माँ को मार दिया।''

फिर तड़ातड़ भिखारी को डंडे, घूंसे पड़ने लगे। बालक भौचक्का-सा सब कुछ देख-देखकर रो रहा था। एक हाथ तो टूटा हुआ था, दूसरे हाथ से बाबा को बचाने की कोशिश कर रहा था और गिड़गिड़ा कर कह रहा था, ''मत मारो मेरे बाबा को मत मारो।'' लेकिन पुलिस मारते हुए उसे हथकड़ियाँ पहना कर थाने ले गयी। खूब पिटाई की गयी भिखारी की। अनगिनत गालियाँ भी दी गयीं। शरीर लहुलुहान हो गया तब जाकर भिखारी ने यह स्वीकार किया कि ये उसका बच्चा नहीं है।

''तो फिर कम्बख्त यह बता किसका बच्चा है ?''

''जी..जी..वो मेरे भाई ने बरेली के बच्चों के एक प्ले स्कूल से किडनैप किया था।''

''और वो तेरा भाई कहां है ?''

''शाब जी वो तो बम्बई रहता था।''

''रहता था का क्या मतलब है ?''

''जी वो मारा गया दो भिखारियों की लड़ाई में और ये बालक मुझे दे गया।''

''लेकिन इसका तो एक हाथ टूटा है।''

''वह...वह...मेरा भाई बालकों का अपहरण करके कोई-न-कोई अंग बेकार करके भीख मंगवाता था।''

''हे भगवान! दुष्ट ने मेरे बालक का कितनी बुरी तरह हाथ तोड़ दिया...और देखो न क्या शक्ल-सूरत बना दी है। मेरा बच्चा....मेरा लाल! न जाने कितने जुल्म सहे है तूने ?''

अपने बच्चे को छाती से चिपटाकर सान्वी खुद भी रोने लगी। अभिषेक की भी आंखें गीली हो गयीं।

०००

चुभन

❑ सुनीता भड़वाल

क्रोध के आवेग में पैर पटकती माया के तमतमाते चेहरे पर मानों हजारों रंग आ जा रहे थे और वह बड़बड़ाती हुई अपनी ही धुन में कह रही थी जहां मान-सम्मान नहीं आदर नहीं मात्र मजबूरी बन इन्सान निर्वाह करे उसे घर नहीं कहा जा सकता। आज घर तो महलों की सी आभा रखते हैं पर उनमें रहने वाले क्यों कर इतने संकुचित और अपने दायित्व से अनिभज्ञ हैं। वह भी क्या समय था जब हम अपने छोटे से घर में हज़ारों मुश्किलों को जगह दे जीवन-यापन में भी सुखमयी जीवन का रंग भरने को सदैव तत्पर रहते। अपने बैड पर बैठे माया साड़ी के आंचल से हाथ सुखाते ना जाने कब अपने जीवन के पिछले दिनों में पहुंच गई। मि. शर्मा काम से लौट घर आते तो माया को घर-गृहस्थी की कार्यशैली में सदैव मग्न पाते। जब कभी वह माया को समझाने का प्रयत्न करते कि वह अपना भी ध्यान रखे तो वह बड़ी सहजता से हंसते हुए उन्हें टालती और कहती बस अब तो कुछ ही समय की बात है पलक झपकते ही यह समय भी बीत जायेगा फिर देखना कैसे हम मात्र अपना ही ख्याल रखेंगे। अजय और अमित अपनी पढ़ाई पूरी कर कुछ बन जायें। दिन-रात समय का पहिया निरंतर अपनी गति बदलता रहा। घर धन-धान्य से परिपूर्ण हुआ। अजय, अमित अपनी-अपनी गृहस्थी की जिम्मेदारी में बंधते चले गये और माता-पिता के हाथों से पुत्र कटी पतंग की मानिंद कहीं दूर जा पहुंचे। मि. शर्मा की बीमारी और ऊपर से मियां बीबी को खलता अकेलापन कहीं अन्दर-ही-अन्दर तक बींध देता। बीमारी के अधिक ताव को ना झेलते हुए मि. शर्मा दुनिया से मुंह मोड़ दूर दूसरी दुनिया में जा पहुंचे जहां से कोई कभी वापिस नहीं आ सकता। इस घटना को देख माया चुपचाप सोचती कि वास्तव में मानव नियति का खिलौना है जैसे वह चाहे हमसे कठपुतली की भांति करवाता है। पिता की अन्तिम रस्में पूरी कर अजय, अमित मात्र औपचारिकता को निभाते हुए कहने लगे इस घर में अकेले कैसे रहेगी मां आप ? हम आप को इस तरह नहीं छोड़ सकते आप हमारे साथ चलें। माया के लाख मना करने पर भी कभी अजय तो कभी अमित उन्हें अपने यहां ले जाते। कुछ ही दिनों में यह सिलसिला माया की अन्तरात्मा को झंझोड़ने लगा था। कई बार सोचती कि वह तो मात्र उन सूखे पत्तों की तरह है जिनका अपना कोई अस्तित्व ही ना रह गया हो। ज़ोरदार हवा का झोंका जिस तरफ का हो उसे उसी तरफ धकेल दिया जाता है। कभी छोटी बहू के यहां कोई फंक्शन होता तो मां को वहाँ बुला लिया जाता, कभी बड़ी बहू के दफ्तर का कामकाज या फिर घर में मेहमानों का आना जा कहीं बाहर जाना हो तो मां की उपस्थिति

वहां अनिवार्य हो जाती और जब सभी कुछ नियमित रूप से होता तो मां का महत्त्व ड्राइंग रूम में मेज पर रखी किसी पुरानी वस्तु से अधिक ना होता। हर छोटी-बड़ी बात पर बहुओं की नज़रों के तीर, अकेलेपन का एहसास जैसे अब दिनचर्या में आम बात थी। ख़्यालों में गुम माया का ध्यान तब टूटा जब उसका पोता आंचल खींच पुकार रहा था दादी देखो तो कौन आया है ? अरे दीदी आप अपनी बड़ी बहन को देख माया जैसे कमल की भांति खिल उठी बहुत समय बाद बहन से मिलने की खुशी में मानो आंखों से चेहरे तक अश्रु अविरल धारा बन अपने सारे मन के भाव प्रकट कर गए हों। छोटी बहन को इस प्रकार रोता देखकर बड़ी बहन का ममतामयी मन छलनी की भांति तार-तार हो गया उसे इस तरह भावावेश में देख वह बोली आंसू कमज़ोर दिल के मालिक की निशानी हैं और फिर तुम तो भाग्यवान हो जो इतने काबिल बच्चों की मां हो। आज समाज में तुम्हारा मान-सम्मान और पहचान सब इन्ही से है। तुम्हें तो उस ईश्वर का कृतज्ञ होना चहिए कि मि. शर्मा की मृत्यु के उपरांत तुम्हारे बच्चे तुम्हारा सहारा बने वर्ना आज के समाज में क्या कुछ देखने को नहीं मिलता। काबिल संतान उस परम परमात्मा की एक अनमोल भेंट है जिससे उसने तुम्हें नवाज़ा है। वरना अगर संतान नालायक हो तो मां-बाप का बुढ़ापा सुरक्षित नहीं होता। यह सब बातें माया को भीतर तक गहरे छेद रही थीं। वह मन-ही-मन सोच रही थी आज के इस युग में संतान अगर कामयाब हो जाए तो भी मां-बाप का बुढ़ापा बेसहारा ही रहता है। कम-से-कम नाकाबिल संतान तो मां-बाप को छोड़ कर कहीं नहीं जाती। वह तो कंटीली तार की भांति उन से लिपट अपनी चुभन का एहसास करवाती रहती है। इन्ही सब सवालों के घेरे में फंसी माया ने प्रश्नसूचक नज़रों से बहन की तरफ देखा।

०००

संपर्क : 72/73 सी एस एक्स सैनिक कालोनी

झाड़-पोंछन

❑ मंगला राम चंद्रन

बहुत दिनों बाद गिरीश भाई सपरिवार हमारे घर आये थे उनके आने से हमारे यहां चहल-पहल सी हो जाती है मानों कोई उत्सव हो, आज जब आये तो पड़ोस में लाऊड स्पीकर पर जमकर फिल्मी गीतों की बारिश हो रही थी, अपनी आदतानुसार गिरीश भाई बोले-'यार मेरे आने से इतना खुश हो गया है कि गाना-बजाने का आयोजन कर दिया।'

उसकी हाज़िर जवाबी से हमेशा की तरह लाजवाब हो जाता हूँ और वो मेरे चेहरे पर खुशी का जज़्बा पढ़ लेता है।

पड़ोस से आती गाने की आवाज़ें इतनी तेज थीं कि हम लोगों का आपस में बातें करना नामुमकिन हो गया, आखिर दोनों परिवार मिलकर दूर पिकनिक पर निकल पड़े तब जाकर सुकून मिला।

गिरीश ने पूछा-'तेरे पड़ोस में शादी या सगाई है क्या ?'

मैं हमेशा की तरह सोच कर चुटीले अंदाज़ में बोला-'उनके यहाँ पुरखों को तारने वाला, समस्त पुण्यों को प्राप्त करवाने वाला, खानदान को चलाने वाला परिवार का चिराग आ गया।'

'क्या कोई अलादीन का चिराग मिल गया या 'ऑल इन वन टाइप की कोई चीज'- अपने मस्तमौला अंदाज़ में गिरीश ने पूछा।

मेरी पत्नी तो तैश में थी ही, बोल पड़ी-'भाई साहब आप समझे नहीं उनके यहां चार पोंछन के बाद बेटा हुआ है।'

'क्या भाभी जी आप भी' लड़कियों को पुत्रियां नहीं बोल सकतीं।'

मैं तो बेटी को कन्या रत्न, बिटिया रानी ही बोलती हूँ, ये झाडू-पोंछन नाम तो उन लड़कियों के पिता द्वारा दिये हुए हैं।

हमेशा के हँसमुख गिरीश के चेहरे की रंगत देख कर मुझे दया आ गई-

'छोड़ यार' हम अपना मूड क्यों खराब करें, मोहनजी को ज़रा भी समझ होती तो यों बीवी की जान दांव पर लगा कर पुत्र प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते।'

'अच्छा ये बता, ये तेरे मोहनजी जो हैं उनके पास बहुत पैसा या जायदाद है क्या, जिसे संभालना हो ?'

मेरी पत्नी झट से बोली-'हां-हां, कितना कुछ है! एक बीमार मां, समय से पहले बूढ़ा होता पिता और चार बड़ी बहनों की जिम्मेदारी, पैदा होते ही बुजुर्ग हो गया।'

०००

41 डी/डी एस-3, स्कीम-78, अरण्य नगर, इन्दौर (म० प्र)- 452010

एक ही लड़ाई

❑ डा प्रत्यूष गुलेरी

सदानन्द पिछले वर्ष आया था मैसूर। तब उसने वेंकटरामू को पहली बार देखा था। उम्र होगी कोई 85 वर्ष के करीब। उसका मकान उसके बेटे समीर के ठींक सामने था। बीच में थी अन्दर की सड़क। इस पर कोई पन्द्रह-बीस घर आमने-सामने थे। बेंकटरामू सुबह-सुबह सड़क के किनारे लगे पौधे से फूल तोड़ता था। इससे जाहिर था कि वह पूजा रोज़ करता है। फूल के पौधे से वह इस तरह एक-एक फूल तोड़ता था कि पौधा पूरी तरह खाली हो जाता था। कभी-कभी वह उसके बेटे के मकान के सामने दोपहर और कभी शाम को कपड़े सूखने डालता। इनमें उसकी पत्नी के कपड़े अधिक होते। समीर और उसकी पत्नी मल्लिका ने बातों-बातों में इतना बताया था-'पापा! सुना है, अंकल की पत्नी बीमार रहती है। अंकल ही सारे काम करते हैं। ये आंटी के कपड़े भी धोते हैं।'

'इनका बेटा नहीं है क्या ?' सदानन्द ने पूछा।

'बेटा तो है पापा! बहू भी है। सुना है-वे इन्हें दो वक्त रोटी दे देते हैं। बेटा कहीं बिजनेस करता है। बहू रहती तो घर पर है पर उसका व्यवहार सास-ससुर से मधुर नहीं। वह तो इनसे बोलती तक नहीं।' सदानन्द की बहू ने एक ही साँस में यह सब बता दिया था।

आज सदानन्द ठीक एक साल के बाद आया है समीर के पास। उसकी मुलाकात अचानक बेंकटरामू से हो गई। दोनों ने 'नमस्ते' करके एक-दूसरे का अभिवादन किया। सदानन्द ने देखा वह अपनी ही उम्र की पत्नी को हाथ के सहारे खींचता चला जा रहा है।-'यह इसकी पत्नी होगी।' सदानन्द ने कहा 'पिछले साल तो महीना-भर इसे कहीं देखा नहीं था।'

-'हाँ पापा, पहले यह आंटी बीमार थी। अब अंकल इसे रोज़ सुबह-शाम अपने हाथ से पकड़ कर सैर करने ले जाते हैं।' समीर बोला-पिछले साल तो यह 'बैड्ड पर ही रही।' अंकल ही आंटी के सब काम करते हैं।'

सदानन्द को आज मैसूर आए बेटे के पास पाँचवां दिन था। वह शिवाजी पार्क में पत्नी सहित सैर करने आया था। आज बेटे समीर का मकान मालिक श्रीनिवास भी उनके साथ था।

बातों का सिलसिला बेंकटरामू पर आ टिका। सदानन्द ने कहा-'बेंकटरामू को उसकी पत्नी के साथ देखकर मैं बड़ा खुश हुआ इस बार। यह तो उसे सैर कराने में सफल हो गया है।'

श्रीनिवासन ने तभी बताया-'हाँ साहब, बड़े जीवट का आदमी है बेंकटरामू। पुत्र और बहू ने लोकलाज के लिए साथ रखा है। लॉबी में हैं दोनों की चारपाइयां। बस दो जून खाना देते हैं। बेंकटरामू ही पत्नी की सेवा करता है। ताज्जुब है इसने गीता अम्मां को कैसे खड़ा कर लिया ?'

'बुरा व़क्त आ गया है श्रीनिवासन।' सैर करते थोड़ा रुक कर सदानन्द ने कहा-'सब उस खुदा के हाथ है जैसे मर्जी रखे।'

'बुरा वक्त ही है साहब! कुछ लिख दो न इस पर। औरों को कोई अच्छी राह मिले। दिशा मिले। ज़िन्दगी को कैसे जिया जाए।' 'श्रीनिवासन, बात तो ठीक है। लिखना चाहिए। पर क्या-क्या लिखा जाए ? यह सिर्फ बेंकटरामू का दु:ख नहीं है। पार्क के अलग-अलग बेंचों पर बैठे बूढ़े लोगों का रोना है। लगता है सब के अपने-अपने दु:ख हैं। सदानन्द ने थोड़ा गंभीर होकर आगे कहा- 'श्रीनिवासन, यह ज़िन्दगी एक लड़ाई है। यह लो बेंकटरामू आ भी गया गीता अम्मां को कदम-कदम, हाथ-हाथ सहारा देकर।' सदानन्द ने कहा- बेंकटरामू! तुमने तो कमाल कर दिखाया गीता अम्मां को इस तरह से नयी ज़िन्दगी देकर।' बेंटकरामू और गीता अम्मां दोनों एक साथ बोले-'जीना तो है साहब! जैसे-कैसे भी जिएँ। कदम-कदम एक नईं जंग है।' बेंकटरामू अब माथे से पसीना पोंछते बोला-'पर लड़ाई है। लड़नी तो है-अपने खिलाफ और अपनों के खिलाफ भी। बस अपना एक-दूसरे का सहारा बना रहना चाहिए। नहीं तो...।' गीता अम्मां बोली आगे-'सुख-दुख भी किससे रोना ? पेट के ही आँखें मोड़ लें जब। ठीक है कि नहीं,' तुम्ही बताओ।'

सदानन्द इतना ही बोल पाया - 'तब भी लड़ाई तो लड़नी ही है।'

सदानन्द का अपना बेटा समीर आ गया था। वह आगे कुछ बोलता कि उसके होंठ सिल चुके थे।

ooo

कीर्ति कुसुम, सरस्वती नगर, पो० दाड़ी-176059
धर्मशाला (हि०प्र०)

विशेष साक्षात्कार

ललित निबन्धकार श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय से डा० हारून रशीद खान की बातचीत

प्रश्न– 'हंस' की अपनी संपादकीय टिप्पणी में राजेन्द्र यादव ने ललित निबन्ध को अप्रसांगिक बताया है और इसके भविष्य को अस्वीकार किया है। लेकिन आप अपने प्राक्कथन में इसके भविष्य के प्रति आश्वस्त हैं। आखिर आप की इस आश्वस्तता के आधार क्या हैं ?

उत्तर- 'हंस' के सम्पादकीय में व्यक्त विचार राजेन्द्र जी के अपने विचार हैं। वैसे उनके खंडवा आगमन पर मेरे घर पर ही, मेरी उनसे लम्बी चर्चा हुई थी और वही चर्चा राजेन्द्र जी के संपादकीय में उनके अपने लहज़े में स्थान पा गई। उनकी चिंता निबंध में नास्टेल्जिया के पनप जाने की चिंता है, निबंध की सार्थकता को वे नकारते भी नहीं, उन्हें उसके स्वरूप के लिजलिजेपन पर आपत्ति है और इसी उत्साह के अतिरेक में उन्होंने ललित निबंध को बंदरिया का मरा बच्चा भी कह दिया है। लेकिन उनसे सहमत मैं इसलिए नहीं हूँ क्योंकि मैं ''ललित'' को उस पारम्परिक अर्थ में स्वीकार नहीं करता जिन अर्थों में उसकी व्याख्या होती रही है, ललित का आज अर्थ मनुष्यता को लालित करने के संदर्भ में लिया जाना चाहिये क्योंकि आज के प्रसंग में मनुष्य की अस्मिता ही सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है और किसी भी सर्जक का पहला दायित्व है कि वह यह सोचे कि मनुष्य जो आज है, उससे बेहतर कैसे बन पाए। मैं इन अर्थों में ललित निबंध के भविष्य के प्रति आश्वस्त हूँ क्योंकि आज जो निबंध लिखे जा रहे हैं भले ही कम हों लेकिन वे आज के मनुष्य के प्रति चिन्ता के निबंध हैं। मैं आश्वस्त हूँ कि भविष्य के निबंधकारों को यह चिन्ता ज़्यादा झकझोरेगी और सकारात्मक सोच वाले यथार्थवादी निबंध लिखें जायेंगे।

प्रश्न- डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव ने समकालीन कविता से नवगठित को खारिज करते हुए यह कहा है कि ''नवगीत'' आज के युग-बोध के, आज के जीवन की जटिलता पकड़ने और व्यक्त करने लायक नहीं है। क्या यही बात 'ललित निबंध' की विधा को लेकर की जा सकती है ?

उत्तर- नवगीत और ललित निबंध में फर्क है। वही फर्क जो सरोवर और सरिता में है। नदी सतत प्रवाहमान है जबकि तालाब बंधा हुआ जिसके पोखर में बदल जाने या सूख जाने का खतरा विद्यमान है। चाहे नवगीत के दशक बार विभाजन को लें (सम्पादक-शुंभनाथ सिंह) या उन नवगीतों को जो आज लिखे जा रहे हैं, कुछेक अपवादों को छोड़कर कहीं स्पंदित नहीं करते। एक ठहराव है, सहजता का अभाव है, श्रोताओं और पाठकों के बीच

दूरी है जो कम नहीं हो रही है जबकि ललित निबंध एक प्राणवान विधा भारतेन्दु के जमाने से है जिसका प्रवाह यदि उद्दाम न भी रहा हो तो कहीं टूटा भी नहीं और न ही उसके टूटने की कोई संभावना है। प्रवाह मुड़े और समय की मांग के मुताबिक मुड़े तो यह उसकी प्राणशक्ति का, सामर्थ्य का द्योतक है। आज का ललित निबंध जो अपने नए तेवरों के साथ आ रहा है वह बखूबी अपनी सामर्थ्य का इज़हार करता है और इन मामलों में उसकी तुलना नवगीत से करना बेमानी है।

प्रश्न- आपने अपने प्राक्कथन 'कुछ अर्घ्य-कुछ आचमन' में कहा है कि आज के निबंध में ''भाषा से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण दृष्टि है।'' आपने राजनीति और धर्मों के पाखण्ड से उत्पन्न दिशाहीनता एवं कर्महीनता से मुक्ति के लिए अपने पाठकों को मनुष्यता और नैसर्गिकता से परिचय कराने की बात कही है।

क्या ललित निबन्धकार का दायित्व 'परिचय' करा देने मात्र से समाप्त हो जाता है ? परिचय पुरुषाथे बन जाये, इसके लिए आपमें बैठा लेखक आपसे क्या कहता है? क्या कबीर बन जाना पर्याप्त होगा ? क्या राजनीति-निरपेक्ष सोच एवं क्रिया समष्टि को आत्मसात कर सकेगी ?

उत्तर- मैंने दृष्टि की बात समग्र परिप्रेक्ष्य में कही है। बात परिचय के ही बाद बढ़ेगी और उसी के साथ निबंधकार का दायित्व बढ़ेगा। आज परिचय कराने की बात कर अपने दायित्व की इतिश्री समझ लेना मेरा मंतव्य कभी नहीं रहा। मेरे सारे निबंध कर्मण्यता और पौरुष जागरण की ही बात करते हैं और पूरी ताकत के साथ तमाम पाखण्डों और आडम्बरों के निषेध स्वर के रूप में तनकर खड़े रहते हैं, इसलिये मेरा लेखक केवल परिचय नहीं करना चाहता बल्कि परिचय के बाद अनुपयोगी को तोड़कर नया गढ़ने का संकल्प लेता है। कबीर बन जाना तो बहुत बड़ी बात है, कबीर जैसा साहस अपने आचरण में संजो लेने का यत्न भर कर लें, यही बहुत होगा और मेरे निबंध यदि इस ओर प्रेरित कर पाए तो यही मेरी उपलब्धि होगी। जहां तक राजनीति निरपेक्ष सोच एवं क्रिया का प्रश्न है यह बेहद महत्त्वपूर्ण है क्योंकि बिना राजनैतिक सोच की परवाह किये यदि उस पर आश्रित न रहते हुए हम सार्थक कर्म में लगे रहें तो राजनैतिक विकृतीकरण समाप्त हो सकता है। यह जिस तदर्थ फलवाद को जन्म देता है और जिसका आकर्षण हमारी नियति तय करने लगता है, वह तभी समाप्त होगा जब हम तदर्थ सोच से मुक्ति पाएें और यह मुक्ति तभी मिलेगी जब हमारी पहली प्रतिबद्धता अपने कर्म के प्रति हो, कर्म छद्म के प्रति नहीं।

प्रश्न- आपके निबंधों को पढ़ने से पता चलता है कि आप वर्तमान से सर्वथा असंतुष्ट हैं, और पुराने के प्रति लगाव बड़ा गहरा है। आपकी समझ है कि जो सहज है वही सच्चा है। आदर्श और सिद्धान्त आज असहज हैं और इसीलिए वे सच्चाई के प्रहारों को रोकने के कवच मात्र हैं, सब कुछ दिखावा और फ्राड है। क्या आप महसूस नहीं करते कि सहज नाम समझ हो सकता है ? मनुष्य की तुलना में पशु अधिक सहज होता है और मनुष्य अपनी सम्पन्नता, संस्कृति के निर्माण में जाने-अनजाने असहज बनता जाता है। फिर समझदारी की कीमत पर सहजता का इतनी आदर्शीकरण क्यों

है ?

उत्तर- लगता है आपने अपनी अलग, एनॉलॉजी बना ली। मेरी सोच एक वस्तुनिष्ठ सोच है। यह सही नहीं है कि वर्तमान से मैं सर्वथा असंतुष्ट हूँ और पुराने के प्रति मेरा लगाव गहरा है। आज की गर्मी में, तपती लू के बीच बिना किसी अपेक्षाभाव के खिले रहने वाले गुलमोहरों को मैं नमन् करता हूँ और जाने कब से खड़े हिमालय की उस ऊँचाई को कोसता हूँ जो ऊँचाई के लिये जाने कितने गढ़वालों को उजाड़ता है। सहजता एक नैसर्गिक गुण है जो विरासत में मनुष्य को मिला है और वह पाखण्ड तथा छदम् से परे है इसलिए निश्चय ही सच्चाई के नज़दीक है, सहज और समझ में अंतर है। ज़्यादा समझदार कांइयां होते हैं, इसलिए सियार को सयाना भी कहा जाता है। यदि समझदार सहज हो जाए तो आज की मनुष्यता का चरित्र बदल सकता है। उत्कृष्ट चाहे अतीत का हो या वर्तमान का वह ग्राह्य होना चाहिये, ''चिंतन'' के तहत 'धर्मयुग' में छपे मेरे विभिन्न निबंधों में यही सोच अभिव्यक्त हुई है। पशु सिर्फ सहज़ नहीं होता, वह हिंस्र भी होता है। बिना किसी विवेक के वह फसलें रौंदता है, अनजानों के प्राण लेता है इसलिए विवेकहीनता को सहजता मानना बेमानी है। यह बड़ी गलत सोच है कि मनुष्य अपनी सम्पन्नता और संस्कृति के निर्माण में जाने-अनजाने असहज होता चला गया। वास्तविकता तो उल्टी है, राम, कृष्ण, गौतम, महावीर, पैगम्बर हज़रत मोहम्मद और नानक से बड़े कौन से संस्कृति पुरुष हैं ? लेकिन ये तो कहीं से भी असहज नहीं हैं। जिसे आप जाने-अनजाने मनुष्य का असहज होना कहते हैं वह वास्तव में उसका थोथा अभिजात्य है, दंभ है जो उसके संकरे सोच की उपज है। समृद्ध तो वे हैं जो विपन्न हैं धन के संदर्भ में, लेकिन जिनकी चेतना उदार है जो खुद भूखे रहकर अनजान अतिथि को अपने मुँह के निवाले सौंपते हैं। मैं सहज़ता के आदर्शीकरण की बात नहीं करता सिर्फ यही चाहता हूँ कि जिनमें समझ है वे सहज बने रहें अपनी समझ के अभिजात्य को समाज पर लादे नहीं और जो नासमझ हैं उन्हें सहज बना रहने दें उन्हें नाहक सयाना बनाने की कोशिश न करें।

प्रश्न- आपकी एक बात मुझे पसन्द आई। शिखरों से बोलने वाले लोगों की बोलती पोल खोलने के लिए निरन्तर बोलते रहना आवश्यकता है। इस संदर्भ में आपने 'बोलने की शैली' में बदलाव की बात की है। इसके लिए आप ''गीत, संगीत, लय, तान माधुर्य का है।'' क्या ललित निबन्ध की रूमानी संरचना इसका वहन कर पाएगी ? अगर कर सकेगी तो इसका प्रयोग होना चाहिए ?

उत्तर- ''शिखर से बोलते हुए'' निबन्ध ही एक बदलाव वाली शैली का निबंध है (संग्रह-एक भोर जुगनू की) वह शिखर से बोलने वाले लोगों की पोल को खोलने के उद्देश्य से ही लिखा गया है। आज जो बिना संघर्ष और साधना किए, तिकड़म की बात पर, शॉर्ट कट से शिखर पर पहुँच गए हैं वे कभी नहीं चाहेंगे कि उनका स्थान कोई दूसरा व्यक्ति ले। ऐसे लोग संवेदनशून्य होते हैं, करुणा, मैत्री, दया, इन सबसे उनको कोई सरोकार नहीं होता, वे तो लय, तान और माधुर्य के हन्ता ही बने रहना चाहते हैं। मेरी दृष्टि में यह सब उजागर होना ज़रूरी है क्योंकि यही अभिव्यक्ति झकझोरेगी यदि इस अभिव्यक्ति से ललित निबंध की रूमानी संरचना टूटती है तो उसे टूटना चाहिए और ऐसे प्रयोग ज़रूर होने चाहिए

क्योंकि रूमानी संरचना के मोह ने इस विधा को बड़ा ग़ैर संप्रेषणीय बनाया है और शब्दों के ललित प्रयोगी आग्रह के कारण शब्दों की अर्थवत्ता ही खो गई है। वास्तव में ललित के अर्थ आज के संदर्भों में भिन्न हैं। और जैसा कि मैंने पहले कहा ललित का अर्थ है वह जो मनुष्यता को लालित करे।

प्रश्न- **मेरी समझ है कि ललित निबंधकार केन्द्रीय रस आनन्द है जिससे आधुनिक कविता ने किसी-न-किसी बहाने किनारा कसा है। ललित निबंधकार विरूपन में सौन्दर्य नहीं देखता। आपके निबंधों में आंतरिक बौखलाहट है, हालात पर कुढ़न है, लेकिन आप सौन्दर्य और रूमानी, मर्यादाओं को कहीं तोड़ते नज़र नहीं आते। रससिक्तता बनी रहती है और आपका 'प्राणवादी' होना पुष्ट होता है। लेकिन क्या यह दृष्टि 'आज' और 'आधुनिक' को समझने में सहायक होगी ? ऐसा नहीं कि आज की विडम्बनाओं की खबर आपको नहीं है। बल्कि खूब है। लेकिन उनका रेखांकन एक कौंध बनकर रह जाता है, विरोध या विद्रोह स्थायी भाव नहीं बनता। सहानुभूति होती है, तदात्म्य बनता है और कर्म या शक्ति निस्तेज बन जाती है। मैंने यही अनुभव किया। इसके लिए आप मुझे क्या रास्ता सुझाते हैं ? इस दिशा में 'ललित निबन्ध' कितने उपादेय हो सकेंगे ?**

उत्तर- मेरे निबंधों को श्रीकांत जी जोशी 'ललित और ज्वलित' कहते हैं। आपके प्रश्नों में यही तथ्य झांकता है। ललित निबंध का केन्द्रीय रस आनंद नहीं है। यह पहले कभी रहा करता होगा आज नहीं है। मैंने विरूपन में सौन्दर्य देखने की कोशिश की है। जहाँ कहीं भी युगीन संदर्भों को मैंने टटोला वहां बड़ा वैषम्य और विद्रूप देखा जिसे शब्द दिये हैं। रससिक्तता का बना रहना भाषा के प्रवाह के कारण है, प्रकृति के सहज और निश्छल सौन्दर्य के चित्रण के कारण है, यह अनायास है, सायास नहीं। मेरी दृष्टि पूर्णत: आधुनिक और वैधानिक है। आपने इसी कारण शायद यह संदेह कर लिया कि क्या ऐसा लिखते ''आधुनिक'' को समझा जा सकेगा? जहाँ तक आधुनिक कविता का संबंध है वह अति यथार्थवादी होने के चक्कर में रसहीन होती चली गई, यदि वह भाषा के प्रवाह को साथ लेती तो ऐसा नहीं होता।

मैं अपने लेखन को सफल मानता हूँ, यदि उसने कौंध भी पैदा की। विरोध या विद्रोह को स्थायी भाव बनाने का काम बखूबी व्यंगकारों ने किया है जिनमें परसाई शीर्ष पर है। ललित निबंध और व्यंग में यही फर्क है। ललित निबंध में यदि भाषा का प्रवाह रससिक्तता दे और दृष्टि कौंध जगा दे तो निबंधकार का श्रम सार्थक हो जाता है। कौंध का जाग जाना अपने-आप में बड़ी बात है क्योंकि यहीं कौंध जब विस्तार पाएगी तो कर्म स्वत: गतिशील होगा। मैं आपको क्या रास्ता सुझाऊं, मैं तो अभी खुद टटोलने की स्थिति में हूँ लेकिन यह ज़रूर कहूँगा कि अलाव यूँ ही नहीं धधकते एक चिंगारी ही पहले कौंधती है। इस दृष्टि से यदि ललित निबंध लिखे जा रहे हैं तो समाज के लिए उनकी उपादेयता असंदिग्ध है।

प्रश्न- **आपके दूसरे संग्रह ''अंधेरे के आलोक पुत्र'' में आपकी संश्लेषी दृष्टि का आभास**

मिलता है। आपके अध्ययन की व्याकुलता, आपके मिजाज़ आपकी विराट समाज चिन्ता का भी पता चलता है। सारे 'उजास पुरुष' सतत कर्म और संघर्ष के प्रतीक हैं। सही भी है। सबको उनके मूल स्वर को देखने-समझने का आप आग्रह करते हैं जो उचित भी है। लेकिन आप 'राम' और 'कृष्ण' को इतिहास पुरुष मानते हैं जबकि इन्हें 'काव्य पुरुष' मानना अधिक समीचीन होता। क्या राम की ऐतिहासिकता का कोई प्रमाण है ? क्या गुजरात तट पर खुदाई से प्राप्त चीज़ें यह स्पष्ट करतीं हैं कि वही कृष्ण की नगरी मथुरा थी ? क्या यजुर्वेदी कृष्ण भी मथुरावासी थे ? क्या अयोध्या और मथुरा काव्य-कल्पित नहीं है ?

उत्तर- मेरे दूसरे निबंध संग्रह में मैं जो बात करना चाहता हूँ, वह बात आपने अपने प्रश्न में ही बड़ी अच्छे ढंग से उजागर कर दी। राम और कृष्ण निस्संदेह इतिहास-पुरुष हैं। काव्य-पुरुष तो उन्हें परवर्ती काल में बना दिया गया। वे सच्चे कर्म पुरुष और हमारी सांस्कृतिक अस्मिता के स्थायी प्रतीक व्यक्तित्व हैं। राम की ऐतिहासिकता के पुरातात्विक प्रमाण मिले हैं और डॉ० राव ने द्वारिका खोज निकाली है, सागर के बीच से। होता यह है जो पौरुषवान ऐतिहासिक व्यक्तित्व होते हैं वे धीरे-धीरे कालांतर में किंवन्दती पुरुष बनते चले जाते हैं, साहित्य सर्जकों की दृष्टि इतिहास दृष्टि नहीं होती, आख्यान दृष्टि होती हैं, इन युग पुरुषों के साथ भी यही हुआ है। इनके साथ आख्यान जुड़े, कथाएं जुड़ीं, किंवदंतियां और चमत्कार जुड़े जिनमें हमारी वाचिक परम्परा का बड़ा हाथ रहा और जब कल्पना यथार्थ से जुड़ती है तो काव्य जन्म जाता है। राम और कृष्ण, मथुरा और अयोध्या से जुड़े ज़्यादातर प्रसंग काव्य कल्पना की देन हैं। वैसे आज प्रासंगिकता इन कर्म पुरुषों के आचरण से प्रेरणा लेने की है, उनके काव्यमय और लीलामय स्वरूप की ओर देखना एक आस्था दृष्टि है। ये हमारे ऐसे प्राचीन संस्कृति पुरुष हैं कि इनकी ऐतिहासिकता के बारे में शोध करना व्यर्थ है, इनमें इतिहास और काव्य दोनों कुछ इस तरह घुले-मिले हैं कि उन्हें पृथक् कर पाना मुश्किल है। यदि कोई इन्हें काव्य पुरुष ही मान लें तो भी कोई हर्ज़ नहीं बशर्ते कि यह इनके उदार आचरण और अद्भुत जिजीविषा शक्ति से अपने आपको स्पंदित कर सकें।

प्रश्न- एक बात और मन में खटकती है। कृष्ण और राम का मेल बुद्ध से कैसे हो सकेगा ? तीनों पूज्य हैं, लेकिन अपने-अपने कारणों से। राम जिन्हें सँवारते हैं, बुद्ध उसके विरुद्ध खड़े होते हैं। दरअसल बुद्ध तादात्मय भी इसी में है। कृष्ण का व्यक्तित्व जो उभर कर सामने आया है वह पूजा मात्र गया हो, उसमें पूज्य बुद्ध दिखायी नहीं देता। मुहम्मद साहब भी बुद्ध और राजनीतिक सत्ता के दायरे में दिखते हैं। जैसे प्रारंभिक पुनरूत्थानवादी मुहम्मद साहब की तलवार नहीं भूल पाते वैसे ही नव हिन्दुत्ववादियों को राम का तीर-धनुष और कृष्ण का चक्र-सुदर्शन याद आता है। क्यों न ऐसे प्रतीक चुने जायें तो तलवार, तीर और चक्र से विरत हों। क्या संस्कृति सेक्युलर संदर्भों से नहीं समझी जा सकती ? मेरी समझ में बुद्ध, सुकरात, ईसा मसीह, गांधी आदि आज के युद्ध-जर्जर संसार में अधिक सार्थक हैं, वास्तविक 'उजास-पुत्र' हैं। आपकी क्या राय है ?

उत्तर- यह प्रश्न आपके मन में इसलिये उठा है कि एक का प्रतिबिम्ब दूसरे में देखने की कोशिश

की। यह कोशिश ज़रूरी नहीं है, इसलिए कि इन 'उजास पुरुषों' के कालखण्ड भिन्न हैं, ये सब एक ही समय में नहीं हुए और हर समय के सवाल एक से नहीं होते। हर समय के अपने सवाल होते हैं और हर युग-पुरुष जो उस समय में जन्मता है वह उन सवालों से जूझकर उनके समाधान देता है। और इसी कारण वह समादृत होता है। अपने संग्रह में मैंने विभिन्न कालखण्डों में जन्में, विभिन्न धर्मों के 'उजास पुरुषों' का एकसाथ स्मरण इसी उद्देश्य से किया कि हम उनके युग के प्रश्नों और समाधानों से परिचित हो सकें, साथ ही यह कोशिश भी की उस धरातल की खोज की जाए तो मनुष्य मात्र के लिये हर काल में ऐसा रहा है जिस धरातल पर इन युग-पुरुषों की वाणी और आचरण में एक्य है क्योंकि यही धरातल आगे भी ऐसा रहना है और जो एक्य है इन सबके चिन्तन में वही हमारे भविष्य के सवालों का हल भी है। हज़रत साहब की तलवार, राम का धनुष और कृष्ण का सुदर्शन-चक्र स्थायी प्रतीकों के रूप में इन महापुरुषों से जुड़ गए हैं इसलिए इनका प्रतिस्थापन संभव नहीं। संस्कृति कभी साम्प्रदायिक नहीं होती क्योंकि वह जीवन-मूल्यों का मूर्त रूप होती है। सेक्यूलर बड़ा भ्रामक शब्द है जिसे धर्म के साथ जोड़कर उसका अनर्थ कर दिया गया। संस्कृति के सीधे सरोकार मानव मात्र से हैं। वह किसी वर्ग, जाति या वर्ण के बंधन से परे है। वास्तविक और अवास्ताविक उजास पुरुषों का कोई भेद नहीं हो सकता। हर युग के अपने सवालों का जवाब देने की, उनसे जूझने की और समाधान की सामर्थ्य जिसमें हो वही सच्चा उजास-पुरुष है। जहाँ तक युद्ध-जर्जर समाज का प्रश्न है, वह कृष्ण के समय में भी था, राम के समय में भी, ईसा, मोहम्मद और नानक के समय में भी। सुकरात हो या गांधी, बुद्ध हो या महावीर, ये सब 'उजास-पुरुष' हैं क्योंकि ये सभी भले भिन्न-भिन्न कालखण्डों में, अंतरालों में जन्में हों, समूची मानवता इनके अवदान से दीप्त होती रही है, अंधेरा छंटता रहा है, इसलिये 'अंधेरे के आलोक पुत्रों के जन्म की बेला का क्रम टूटता नहीं है। सोहर गाने वाले कंठों को विराम नहीं दिया जा सकता।'

प्रश्न- **एक बार पुनः आपके ललित निबन्धों की तरफ। आपके दोनों संकलन सम्पूर्ण हैं। यहाँ पलाश है, गुलमोहर है, बसंत है, पावस है, चिनगारी है, शिखरों से बकते लोग हैं और लोकतंत्र की 'राजधानी' भी है। भीड़ है, सन्नाटा है, पर्यावरणीय चिन्ता है, और प्रत्येक पृष्ठ महापुरुषों की पावन स्मृति से सराबोर है। आपका सबसे अच्छा पक्ष यह है कि आप कुबेरनाथ राय की तरह पोथी का बोझ नहीं ढोते और न ही डा० विवेकी राय जी की तरह ज़मीन पर ही रह जाते हैं। विद्यानिवास जी की संस्कृति वाङ्मय से भी आप कमोबेश मुक्त हैं। लेकिन 'अंधेरे के आलोक-पुत्र' को पढ़ने पर लगा कि आपने उपदेष्टा का रूप अपना लिया है। चिन्ता बहुत मुखर हो स्थूल हो गयी है, ताज़गी का अभाव है प्रचुर विश्लेषण है। सबको मिलाकर एक निबंध सम्भव था। क्या ऐसे प्रयास से बचा नहीं जा सकता ?**

उत्तर- मैं जिस समाज में जीता हूँ जिनके बीच सांस लेता हूँ उसे व्यक्त करना मेरी स्वभाव जन्य विवशता है। कुबरेनाथ जी, डा० विवेकी राय जी और विद्यानिवास जी हमारी धरोहर हैं, भले उनसे असहमत हुआ जाए लेकिन इन लोगों ने हमारे वाङ्म्य को अपनी-अपनी तरह

से समृद्ध किया है। विद्यानिवास जी ने तो अपनी अलग शैली विकसित की और वे बड़े संप्रेषणीय भी हैं।

यह सही नहीं है कि "अंधेरे के आलोक-पुत्र" के निबंधों में मैंने उपदेष्टा का रूप ले लिया है। उपदेशक न हो पाऊं मैं तो यही प्रार्थना करता हूँ क्योंकि उपदेशक अपने आपको पूर्ण मानता है और मैं अपूर्ण ही बना रहकर, प्यार को संजोए रहकर, तृप्त होने की आशा निरन्तर करता हूँ। चिंता का मुखर होना स्वाभाविक है इसलिए कि बैचेनी निरन्तर बढ़ती जा रही है और जब चिन्ता ज़्यादा मुखरित हो तो लगता है वह स्थूल हो गई। चिन्ता कुल मिलाकर चिता है इसलिए वह क्षीण हो या स्थूल वह आंदोलित करेगी ही बल्कि चिन्ता स्थूल हो उभरे तो यह शुभ है। आप कहते हैं इन निबंधों में ताज़गी का अभाव है तो मेरा यह प्रतिप्रश्न है कि आप ताज़गी किसे कहते हैं ? जहाँ विषयों की, प्रसंगो की, संदर्भों की विविधता हो और वहां एक ही बात की पुनरावृत्ति हो तो ताज़गी का अभाव कहा जा सकता है लेकिन इस संग्रह के निबंधों की भूमि एक जैसी है, प्रकृति एक जैसी है, इसलिए भी विविधता का अभाव है क्योंकि ये व्यक्ति केन्द्रित निबंध हैं और मैंने यह अपने आरम्भिक कथन में ही स्पष्ट किया है कि इनमें गूढ़ दार्शनिक विवेचन नहीं बल्कि कर्मयात्रा की झांकी है इसलिए आप जिन अर्थों में ताज़गी अनुभव करना चाहते हैं, निश्चय ही उनमें नहीं है। जहाँ तक प्रचुर विश्लेषण का प्रश्न है वह ज़रूरी था क्योंकि बगैर इन निबंधों के मर्म को नहीं समझा जा सकता। सबको मिलाकर एक निबंध यदि लिखने की कोशिश होती तो वह निबंध नहीं होता निर्बंध होता। वास्तव में ये सारे महापुरुष अलग-अलग कालखण्डों, और परिस्थितियों में जन्में, वे सही परिप्रेक्ष्य में जाने जा सकें इसलिए उन पर अलग-अलग निबन्ध लिखे गए। ऐसे प्रयास से बचने का प्रश्न नहीं है। बल्कि ऐसे प्रयास तो निरंतर होने चाहिए कि विभिन्न धर्मों के उत्सपुरुष जो विभिन्न कालों में जन्में उन्होंने किन परिस्थितियों में संघर्ष कर समूची मानवीय अस्मिता की रक्षा की।

प्रश्न- इस सदी की प्रमुख उपलब्धियाँ क्या हैं ? और आज की चुनौतियाँ ?

उत्तर- इस प्रश्न का उत्तर इतने विस्तार से भी दिया जा सकता है कि एक ग्रन्थ बन जाये और केवल दो पंक्तियों में भी। मैं दो पंक्तियों में ही उत्तर देना चाहूँगा। इस सदी की कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ हैं, कुछ तदर्थ विकल्प और चुनौतियाँ हैं, इन विकल्पों के सार्थक संकल्पों से प्रतिस्थापना ताकि भविष्य की उपलब्धियाँ आने वाले इतिहास की स्थायी धरोहर बन सकें।

प्रश्न- आपने इन निबन्धों "अंधेरे के आलोक-पुत्र" के बारे में कहा है कि ये साहित्यिक या धार्मिक किस्म के निबंध नहीं हैं। तो फिर बताइये कि ये किस किस्म के निबंध हैं ?

उत्तर- दरअसल यह बात मुझे इसलिए भी स्पष्ट करनी पड़ी क्योंकि हिन्दी में हमने निबंधों के खांचे बना दिए हैं, जबकि अन्य भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी में सिर्फ "ऐसे" (ESSAY) है निबंध के लिए। वास्तव में ये सिर्फ निबंध हैं, इनकी कोई किस्म नहीं है। चूंकि ललित निबंधकार हूँ इसलिए सफाई देना ज़रूरी समझा क्योंकि शैलीगत प्रभाव इन निबंधों में छलक आया है।

प्रश्न- **आपकी शुरुआत व्यंग लेखन से हुई। कमलेश्वर जी के समय में 'सारिका' में आपकी लघुकथाएँ बहुत आयीं। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी आप व्यंग्य लिखते रहे फिर यह विधा (ललित निबंध) आपने क्यों चुनीं ?**

उत्तर- मैं बचपन से ही हरिशंकर परसाई से बहुत प्रभावित रहा। फिर मेरे ही शहर के माणिक वर्मा और अजातशत्रु हैं, इन सबका निरंतर सान्निध्य मेरी कच्ची उम्र में ही मुझे व्यंग्य लिखने को प्रेरित करता रहा, और मैंने काफी व्यंग्य लिखे लेकिन बाद में मैं मध्यकालीन लघु चित्रों के अध्ययन में डूबा। इस काल के काव्यों पर आधारित रूपायनों ने मुझे बहुत आकृष्ट किया और मेरी मानसिकता इस रस में भीगी जिसने मेरी भाषा की गढ़न को बदला। फिर संस्कार मेरे व्यंग्य के रहे, अपनी समकालीन विसंगतियों और परिवेश से मैं जुड़ा रहा इसलिए इन दोनों के मिलाप ने वे निबंध सृजित किये जिन पर मैं आपके प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूँ। ये निबंध कैसे अनायास जन्मते गए मुझे नहीं मालूम। अवचेतन में विभिन्न प्रभावों के रसायन घुल-मिलकर कुछ नया रचते हैं ये निबंध उसी रचाव के परिणाम हैं।

प्रश्न- **आप हिन्दी के किन निबंधकारों से प्रभावित हैं या उनका लेखन आपको अच्छा लगता है?**

उत्तर- अवचेतन पर पड़े प्रभावों का विश्लेषण सम्भव नहीं लेकिन निस्संदेह हजारीप्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, हरिशंकर परसाई, विद्यानिवास मिश्र मेरे प्रिय निबंधकार रहे हैं।

प्रश्न- **आपकी आकांक्षा ?**

उत्तर- हिन्दी की खेमेबाजी से बाज आया जाए जो पाठक से लेखक की दूरी बढ़ा रही है और व्यक्तिगत स्तर पर लेखक लेखक के बीच वैमनस्यता पैदा कर रही है।

ooo

सहायक सम्पादक 'समकालीन सोच'
मुहल्ला-खजूरियां, पोस्ट-पीरनगर,
जनपद-गाजीपुर (उ०प्र०) पिन-233001
मोबाइल नम्बर: 9889453481

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, अपर आयुक्त,
वाणिज्यिकर (म०प्र०)
दूरभाष नम्बर: 0731-2363449

नारी

❑ गुरु प्रसाद शर्मा

किस रूप की पूजा करूँ मैं,
कई रूपों में अवतार लिया।
नारी ने तो हर रूप में,
इस दुनियाँ को प्यार दिया॥

इक माँ का रूप है वो
कभी छाँव कभी धूप है वो।
माँ के आँचल ने ही सबको,
खुशनुमा संसार दिया॥

नारी ने..........
बेटी बन आँखों का तारा
खुशबू से महके आँगन सारा।
माँ-बाप का हर इक सपना,
तूने ही तो साकार किया॥
नारी ने..........

घर-घर का अनमोल गहना,
मासूम, नटखट प्यारी बहना।
पवित्रता के इस बंधन में,
भाई का जीवन संवार दिया॥

नारी ने..........
रिश्तों को निभाना सिखाया,
मुहब्बत को जताना सिखाया।
प्रेमिका बन इस कोमल रिश्ते पे,
सब कुछ अपना वार दिया॥
नारी ने ....

त्याग की मूरत है वो,
खुदा की सूरत है वो।
पत्नी बन तूने पति की,
हर मुश्किल को है पार किया॥

नारी ने तो हर रूप में
इस दुनियाँ को है प्यार दिया

सात सौ वर्ष पश्चात् 'लल' पुनः जीवित हो उठी!

पुस्तक	लल द्यद
लेखक	वेद राही
पृ. संख्या	105
मूल्य	केवल 45 रुपये
प्रकाशन संवत्	2008
प्रकाशक	नैशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
भाषा हिन्दी	डोगरी से हिन्दी में लेखक द्वारा स्वयं अनूदित

❑ अर्जुन देव मजबूर

श्री वेद राही किसी परिचय के मुहताज नहीं। फिलमकार, पढकथा लेखक, कथा तथा उपन्यासकार, डोगरी भाषा के नामवर कवि, राष्ट्रीय लेखक वर्ग में लोक प्रिय तथा सुंप्रसिद्ध लेखक। उन्होंने डोगरी, हिन्दी साहित्य तथा फिलम-जगत को बहुत कुछ दिया है। वे जम्मू में पल बढ़ कर आखिर मुम्बई के ही होकर रह गए हैं, किन्तु अपने प्रदेश को वे कभी न भूले।

''ललद्यद'' उनका एक लघु-उपन्यास है। दक्षिण भारत की भाषाओं में अब लघु-उपन्यास (Novlet) का चलन आम हो गया है। डोगरी में लघु-उपन्यास लिखकर वेद राही ने एक नई विधा का पथ-प्रदर्शन तो किया ही है किन्तु इस नावलेट में उन्होंने कश्मीर की सर्वोच्च कवयित्री लल्लेश्वरी को करीब 700 वर्ष पश्चात् पुनः जीवित किया है। यह कोई साधारण काम नहीं। सुप्रसिद्ध लेखक ने सात सौ वर्ष पूर्व के कश्मीरी भूगोल, इतिहास, लोकजीवन, सामाजिक-दशा तथा लोक-मान्यताओं को जीवन दान दिया है और वह कश्मीर हमारे सामने खड़ा किया है जिसकी कल्पना करना सचमुच कठिन है।

लल्लेश्वरी को सर्वसाधारण जनता ललद्यद के नाम से जानती है। यह शिव योगिनी अपने जीवन में ही शिव का साक्षात्कार कर चुकी थी। शैव-मत तथा शैव दर्शन को कश्मीर की महान देन समझा जाता है। यह दर्शन कोई 900 वर्ष पुराना है। दक्षिण भारत में इस दर्शन को समझने वाले काफी विद्वान मौजूद हैं। कश्मीर ने महायान-शिव-दर्शन को आगे बढ़ा कर इसका खूब प्रचार किया। किन्तु धीरे-धीरे इस दर्शन को जानने वाले कम होते गए।

एक अमरीकी दर्शनकार से जब पूछा गया कि वे भारत के किस दार्शनिक को आज तक का महान दार्शनिक मानते हैं तो उन्होंने कश्मीर के 'अभिनवगुप्त' का नाम लिया। इस बात से कश्मीर के शैव दर्शन सम्बन्धी त्रिका-शास्त्र की महानता तथा अभिनव गुप्त की इस शास्त्र सम्बन्धी गूढ़ तत्वों की व्याख्या का भान होता है।

ललद्यद की महानता इस तथ्य में छिपी है कि उसने शैवदर्शन के गूढ़ रहस्यों को

कश्मीरी वाखों में इस तरह पिरोया है कि बार-बार पढ़ने से इस दर्शन के परत-दर-परत तथ्यों को समझने में सुविधा होती है।

प्राय: देखा गया है कि समकालीन कवियों का कलाम कहीं-कहीं, यह काव्य लिखने वालों ने एक-दूसरे के खाते में डाल दिया है, जिस से कई भ्रान्तियां उत्पन्न हो गई हैं। उदाहरण के लिए नुन्द ऋषि के कुछ श्रुक (श्लोक) 'लल' के वाखों में सम्मिलित किए गए हैं। इसी प्रकार वाखों के व्यंजनापूर्ण अर्थों को लक्षणार्थों में लेकर अर्थ का बिगड़ाव उत्पन्न हुआ है। उदाहरण के लिए वह वाख जिसमें ''नवय हर्यातुम नंगय नचुन'' (तब से मैंने नंगा नाचना आरम्भ किया। वास्तव में इसका अर्थ है कि इसी कारण मैंने अपनी आत्मा को शिव में पूर्णतय: लीन कर लिया। कुछ लेखकों ने इस भ्रान्ति के बारे में लिखा भी है, कि ''नंगे'' एक पुष्प है जो कश्मीर के ऊँचे पहाड़ों पर लहराता रहता है। तथ नचुन का अर्थ नाचना नहीं अपितु घूमना-फिरना है (स्व. मास्टर शंकर पंडित—''ललद्यद'' पृष्ठ 85 (Foot note) वाखों का उर्दू अनुवाद प्रो. नन्द लाल कौल तालिब तथा प्रो. जिया लाल कौल कृत इस पुस्तक को जे. के. कल्चरल अकादमी ने 1984 में प्रकाशित किया है।

लघु-उपन्यास में यदि ''नंगी नाचने'' के बदले कम तथा फट्टे वस्त्रों का ज़िक्र किया गया है फिर भी जिस युग में 'लल' जी रही थी उसमें कश्मीर में काफी बर्फ गिरती थी। बर्फ में गरम कपड़े छोड़ कर नाचना खासकर एक स्त्री द्वारा, कुछ असंगत-सा लगता है किन्तु ज़रूरी नहीं कि एक उपन्यासकार इतिहास को हूबहू प्रस्तुत करें।

उपन्यासकार ने 'लल' के जन्म स्थान को ''पाँद्रेंठन'' बताया है किन्तु इस बारे में स्पष्ट है कि वह स्यंपुर गाँव की रहने वाली थी। पांद्रेंठन (पुराणाधिष्टान) कश्मीर की एक राजधानी थी। कश्मीर की, आज तक नौ राजधानियाँ हुई हैं इसका प्रमाण हमें इतिहासों में मिलता है। एक और बात जो शब्द-राशि 'लल' प्रयुक्त करती है वह ग्रामीण ही है शहरी भाषा नहीं। कुछ शब्द लीजिये :

खर (गधा), कोंग वॉर (केसर की बाड़ी), खारचुक (छोटा तेज़ घोड़ा) शाल (गीदड़), त्वर्ग (घोड़ा), ग्रट् (ग्राट-आटा आदि पीसने की पन चक्की), हँडी (मोटे भेड़), वटा (पत्थर), पुश, (पशु), तॉड्य (द्वार या खिड़की बंद करने की लकड़ी की साँकल) लतन (जांघ या तलवे), श्य-वन (ग्रर्थ छ चक्र), श्यवोत (जहां से रस्ते मिलते हो), दसन-हाल (लोहार जिस खाल से हवा द्वारा आग तेज़ करता है), कपसि-पोध (कपास का फूल), कॉड्य (कपास से रुई निकालने का लकड़ी का यन्त्र), दून (धुनिया), वोकुर्य-वान (हथ-कर्गा), सरशफ (सरसूं), गंडाह (गाँठ), गुर (घोड़ा), पलनस (घोड़े का ज़ीन, जिस पर सवार बैठता है), वोंद् (मन), सूर (पाला), टंग (नाश्पाती), चूंठय (सेब), बबरि लंग (रैहान की शाखा), ह्रन्य वस्त् (कुत्ते की खाल), सॅर्य मिनि-टूल (संपनी का अण्डा), क्रूर (कुआँ), हँद (एक सबजी जो गाँव और जंगलों में स्वयं उगती है), याखि-जंगुल (चीड़ का वन), क्यलुम (चीड से निकलने वाला मवाद), शाहीन (उकाव), गँअठ (चील), ज़ल (पानी), हॉरिंज (कमान),

प्यच् (एक लम्बी घास), पुहुन-वाव (पोध-मास की हवा), नद (नदी), क्रॉज् (कुम्हारिन), स्यख (रेत), रींज (कंकर), कॅन्य-दांद (कम काम करने वाला बैल), शाठ (फैलाव-रेत का), कोम (चावल का गर्दा), याजि (एक प्रकार की प्याले की तरह रोटी)।

लघु-उपन्यास में 'लल' का जीवन काल, उसके गुरु स्यदमोल, उसके माता-पिता, गुरु के न मानने पर भी माता-पिता द्वारा 'लल' का विवाह पाँपुर (पदमपुर) के एक निर्दयी घर में करना, लल के चमत्कारों को ससुराल वालों का पगली का जादू कहना, लल को कम खाना देना, सास तथा पति द्वारा 'लल' पर अन्याय करना और फिर उसका ससुराल छोड़ना स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। इस में उपन्यासकार ने 'लल' सम्बन्धी कथाओं का सहारा लिया है।

इस लघु-उपन्यास से एक आम व्यक्ति, जो हिन्दी ठीक से जानता है ''लल'' की महानता को समझ सकता है। यह नावल्यट हिन्दी जगत को कश्मीर की 700 वर्ष पूर्व दशा का इतिहास जानने में सहायक होगा।

लल उस युग में पैदा हुई है जब इंग्लैंड में कोई स्त्री लेखिका नहीं थी और स्त्रियों के बारे में कहा जाता था : (cats can not go to the heaven) अर्थात् बिल्लियां जन्नत (स्वर्ग) में नहीं जा सकती। इस प्रकार कश्मीर की प्राचीन महान संस्कृति का बोध होता है। लेखक ने 'लल' का फेरन नाव में छोड़ने का जिक्र किया है जो सात दिन पश्चात् पुन: 'लल' की माता को मिल जाता है कुछ असंगत-सा लगता है।

लेखक ने कुछ कश्मीरी वाखों का हिन्दी अनुवाद सुचारू रूप से करके 'लल' की काव्य शक्ति को प्रदर्शित किया है। कुछ वाख उदाहरण के लिए प्रस्तुत हैं :

1. आई कौन दिशा से, किस पथ से
   जाना है किस ओर यह नहीं पता
   कोई बताए मुझ को सीधी सच्ची राह
   इन श्वासों का कोई नहीं भरोसा

2. अंबर तू है, धरती तू है
   दिन तू है, तू रात, हवा
   अर्घ्य, फूल, फल, जल, चंदन तू
   तू सब कुछ मैं तुझको दूं क्या

लेखक ने उस जुल्म को बड़े ढंग से उभारा है जो मुस्लिम शासक लोगों पर कर रहे थे। गरीबों की दशा शाही-सवारों का लोगों को खौफ, अकाल से पीडित जनता, सभी हालातों को लेखक उभारने में पूरी तरह सफल रहा है। उनकी कल्पना इतिहास के तथ्यों को पूरी तरह समेटती है और कश्मीर की संस्कृति को मिटाने के जो शाही प्रयत्न हो रहे थे उनको भी लेखक ने स्पष्ट कर दिया है।

संक्षेप में कहा जाए तो वेद राही ने कश्मीरी-भाषी न होने पर भी ''ललद्यद'' को गूढ़ वाखों से इतिहास को खोजा है और 'लल' की एक मात्र काव्य-विद्या को आत्म-सात करके, जम्मू-कश्मीर के डोगरी तथा हिन्दी भाषी लोगों के लिए एक सराहनीय साहित्यिक खोज को सरल ढंग से कथा रूप में प्रस्तुत किया है ।

ooo

नवांकुर

गर्भपात

❑ मोहिंद्र नाथ ''अश्क''

गर्भपात क्यों है सज़ा मेरी
मैं लड़की हूँ क्या है खता मेरी

माँ क्यों मेरा जीवन लेती है
माँ तू, तो जीवन देती है

इक बार यह दुनिया दिखा दो मुझे
क्या है कसूर मेरा बता दो मुझे

मैं तेरी हूँ अपना बना लो माँ
इस गर्भपात से मुझे बचा लो माँ

लड़की होने का मुझे ग़म नहीं
किसी लड़के से मैं भी कम नहीं

माँ मैं बेटी बन कर आऊँगी
पर बेटा बन कर दिखाऊँगी

मैं तेरा ही खून हूँ कुछ और नहीं
हाँ, मैं कोमल हूँ पर कमज़ोर नहीं

माँ इस की दोषी आप नहीं
क्या गर्भ गिराना पाप नहीं

आओ गर्भपात को जड़ से मिटाएं हम
आओ मिल कर बेटियाँ बचाएं हम

ooo

सरूईंसर (जैथली), मोब. न. 9858146170

धड़कते हैं शब्द

□ डा. अरुणा शर्मा

पुस्तक : तैंतीबाई
लेखिका : चंद्रकांता
प्रकाशक : पेंगुइन बुक्स दिल्ली

और करते बयान अनकही दास्तानें, विख्यात लेखिका चंद्रकाँता के नए हिन्दी कहानी संग्रह 'तैंतीबाई' में। पुस्तक का मुख्यावरण तथा शीर्षक लीक से हटकर व चौंकाने वाला है वहीं कहानी संसार बहुत जीवंत व यथार्थ। कश्मीर से जुड़ी यह लेखिका विस्थापन के दर्द को मुख्यत: परिभाषित करतीं हैं। वे शोषित व पीड़ित निम्नवर्ग व स्त्री पीड़ा को भी अपने कैनवस पर उभारती हैं। तैंतीबाई को पढ़ते हुए लगता है उन कहानियों के सारे पात्र हमारे आगे-पीछे ही कहीं सांस ले रहे अथवा जी रहे हैं। कई बार सोचती हूँ कि हमसे साहित्य है या साहित्य से हम? कुछ भी है साहित्यकार की गहरी दृष्टि व कल्पना शक्ति अपने अनुभवों को सहेजने व शब्दों में चित्रित करने की क्षमता ही एक साहित्यकार से दूसरे को अलग करती है। यशदेव शल्य ने लिखा है ''एक रचना के सत्य को समझना कठिन कार्य है क्योंकि कला के सत्य के साथ संबंध को समझने के लिए कला के स्वरूप को समझना व सत्य के अर्थ को और स्वरूप को समझना आवश्यक है। कला का अर्थ यहाँ रचना से है। किसी भी रचना का सत्य व स्वरूप जानने के लिए लेखिका/लेखक की परिस्थितियों व जीवन को भी जानना पड़ता है। चंद्रकांता की कहानियों की बात करें तो उसमें मातृभूमि कश्मीर का बिछोह व जुड़ाव की खींच की सुगबुगाहट अत्यधिक स्वर पाई है और किसी-न-किसी बहाने छलक आई है। यह एक स्वाभाविक कारण है जिसने मातृभूमि से बिछोह पाया है वह उस विचार से पूर्णतया मुक्त हो जाए असंभव न कहें तो कठिन तो है ही। उनकी कहानियों में चिनार रोते हैं, पुकारते हैं, जलकुंड का रंग बदलता है। कभी झील पर जल लहरियाँ नाचतीं हैं तो कभी पर्वतों पर हिम फैल जाती है। चंद्रकांता की कहानियों के पात्र प्रेमनाथ हो या शाहीन, सविता हो या कोई और, सभी पात्र कश्मीर में रचे-बसे हैं। 'जलकुंड का रंग' की नायिका कश्मीर से कुछ बटोरने की बात सोचती है ज़रा देखें-''मेरा लालच क्या असीम है ? तृप्ति जैसी चीज़ अलभ्य क्यों है मेरे लिए ? यादों का पारावार मुझे गली-कूचों में घूमाता, जंगल-पहाड़, धरती-आकाश, कहाँ-कहाँ नहीं भटकाता? क्या इसलिए कि मैंने दीवानगी की हद तक वादी के चप्पे-चप्पे से प्यार किया है ? झड़ते पक्षों के साथ रोई हूँ'' और बेशक ऐसा नहीं है कि विस्थापन का स्वर हिन्दी साहित्य या फिर विश्व साहित्य में नया है, विश्व साहित्य का बड़ा हिस्सा बिछुड़ने

के दर्द से ही उपजा है, मातृभूमि से उखड़े लोगों का दर्द हर भाषा के साहित्य में दर्ज है लेकिन फिर भी जिस-जिस ने इसे भोगा उसके लिए यह कभी न भरने वाला नासूर बन ताउम्र रिसता रहा। एक और ढूँढ़ने का न पाने का आलम देखिए- "बस से उतरते ही मैं देवदार और सफेदों के पीछे दुबके बैठे खपरैलों वाले घरों में उस छतनार अखरोट वृक्ष को ढूँढने लगी, जिसकी घनी शाखायें मेरे मामा के घर में घुस जाती थीं (पृ-95 कहानी-कहीं कुछ शेष)अपनी पहचान की तलाश इन कहानियों को एक ऐसे यथार्थ से जोड़ती है जो सर्व सांझा है। यह ढूँढ़ने और न पाने का दर्द, स्मृतियों पर पंजे मारते दृश्यों का बेबाकी से शब्द चित्रण लेखिका की सफलता है।

"बौर गंध में नाचती रही हूँ ?" ऐसा लगता है कश्मीर की एक बेटी नहीं सारी विस्थापित बेटियों की बात चंद्रकांता ने इन शब्दों में कह दी। यह भी हो सकता है यह लेखिका की स्वानुभूति रही हो।

बाज़ारवाद व शहरीकरण के इस दौर में लेखिका 'पायथन' कहानी के माध्यम से प्रेमनाथ व बिट्टी की पीड़ा में कुल प्राकृतिक परिवेश में पले-बड़े लोगों को निगलते पायथनों की बात करती है। "बिट्टी के सपने में भी कभी-कभार वह जीव झलक दिखाता है पर उसने भय का निदान खोज लिया है। पायथन दिखे तो सांस रोककर पड़ी रहती है, चित्त। जानती है, यह सुस्त अलसाया भयावह जीव जब तक तृप्ति की डकार लेकर बेसुध पड़ा है, कोई नुकसान नहीं करेगा। हां, भूख जागेगी तो झपट्टा मारकर शिकार दबोच ही लेगा।" लेखिका ने जहाँ शहरीकरण की दबोच में आए लोगों को और उनके हालात को उभारा है। "यह एक भूख है जो मिटने का नाम नहीं ले रही। ऐसे में बड़े शहरों में काम के नाम पर और तो और लोग गाँवों से शहरों की ओर पलायन को मजबूर हैं। चाहे उनके हिस्से एक मुट्ठी आसमान भी आए या नहीं आए। ठीक ही है। सब कुछ बदलता है पर भूख का मॉडल नहीं बदलता।"

नारी की मूक वेदना को स्वर देती कहानियाँ जैसे 'कोठे पर कागा' व 'नूराबाई' आदि भी मानवीय संबंधों की जटिलता और सामाजिक मूल्य-क्षय को उभारती हैं। उनके नारी पात्र अपने हक की लड़ाई करते जूझते हुए जीते हैं।

'तैंतीबाई' कहानी अपने-आप में एक हल्की-फुल्की बानगी की कहानी बन पड़ी है फिर भी इन सड़कों पर दौड़ती ज़िन्दगियों का यथार्थ इसमें झलकता है।

बहुत सारी जद्दोजहद, त्रासद अनुभव, मानव समाज की उठा-पटक और संतप्त, त्रस्त लोगों की आवाज़ बनकर बुनी गई यह कहानियाँ ईमानदार प्रयत्न हैं, लेखिका हर भाव, विचार व शब्द में प्राण फूंकने की कोशिश में सफल भी हुई हैं।

०००

"अरण्य रोदन" कविता संग्रह-मेरी नज़र में

❑ प्रकाश प्रेमी

सुरजीत सिंह के कविता संग्रह "अरण्य रोदन" को पढ़कर मुझे कोई विशेष आश्चर्य तो नहीं अपितु अपार हर्ष अवश्य हुआ। कारण यह कि उसमें कवित्व की न केवल अद्‌भुत शक्ति है अपितु कल्पना की उड़ान भी ऊंची है। डोगरी की उसकी कविताएं और ग़ज़लें बहुत अच्छी हैं और पाठकों श्रोताओं द्वारा सराही गई हैं। उर्दू भाषा का कोश भी उसका समृद्ध है। हिन्दी में भी वह कविता करता है यह तो मुझे ज्ञात था परन्तु इतनी अच्छी कविता कर लेता है यह मैं नहीं जानता था। अत: पाण्डुलिपि पढ़ने पर मुझे अपार हर्ष हुआ।

"अरण्य रोदन" काव्य-संग्रह में कुल 38 कविताएं हैं जिनमें रहस्यवादी स्वर स्पष्ट दिखता है। कवि को रहस्यवाद की पूरी समझ है, यही कारण है कि इन कविताओं की उपमाएं, अभिनव प्रतीक और चित्ताकर्षक बिम्ब मन को छूने में सक्षम हैं। उसके संग्रह की पहली कविता ही मन को आकर्षित कर लेती है-

कर्ण का धर्म ही क्या श्रवण के बिना
पर, सरस शब्द कोई सुनाओ प्रिये!

ऊपरी तौर पर देखने में तो किसी को भी ये पंक्तियां रोमांसवादी ही प्रतीत होंगी परन्तु कवि जिस सरस शब्द की बात करता है अथवा जिस सरस शब्द को वह सुन कर आह्लादित होना चाहता है वह कोई दुनियावी संगीत का स्वर नहीं अपितु "अनहद नाद" है। प्रिया तो उसकी अपनी आत्मा ही है जिसे वह सम्बोधित करके यह नित्य शब्द बुनना चाहता है। वह इश्क-ए-मिज़ाजी की नहीं, इश्क-ए-हकीकी" की बात करता है।

वास्तव में व्यक्ति को पूर्णतया विपन्नावस्था की ओर ले जाने वाली वस्तु सांसारिक संग ही है जो व्यक्ति को बाह्य रूप से : स्मृद्ध परन्तु आन्तरिक रूप से विपन्नता की ओर ले जाता है। काम, क्रोध, अहंकार, मोह और लोभ जैसे विचार भावनाओं के उत्पत्तिकारक हैं। ये मानव मन के भीतर से उपजे हुए वे चोर हैं जो सदैव याचक के रूप में हाथ पसारे रहते हैं, जो समग्र रूप में एकत्रित होकर व्यक्ति को याचक और भिखारी बना कर रखते है। इसी बात को महसूस करता हुआ कवि सुरजीत कहता है कि-

सारा जीवन ही जिन-जिन के हाथों में मैं,
अपने विश्वास का धन हूँ सौंपा किया।
अपव्ययी वे, मेरा मूलधन ले उड़े,
मैं ही भिक्षुक बना, मैं ही मांगा किया॥

यद्यपि मानव के भीतर क्षमताओं की अपार संपत्ति है। उसे अपनी क्षमताओं की इस सम्पत्ति का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं। जिन अनेकों ''बागों'' का वह ''बाग़बां'' है वह स्वयं भी उनसे अपरिचित है तभी तो उसके हृदय को उनका एक भी पुष्प मिल नहीं पाया है परन्तु एक उत्कट इच्छा है उसके अन्दर उस आध्यात्म को जगाने की तभी तो वह कहता है कि शरीर मृत्यु को प्राप्त कर लेने पर भी राख बन जाने का भय न रहे क्योंकि जब आत्मा का परमात्मा में विलय हो जाये अथवा घट और सागर के बीच घट की माया रूपी दीवार टूट जाए तो फिर कोई भय रह ही कहां जाता है-

राख होने का फिर कोई भय न रहे,
अपनी अग्नि में ऐसा तपाओ प्रिये

एक ओर यदि हम लिप्त होने का प्रयास करें तो दूसरी ओर से स्वत: निर्लिप्त होते चले जाते हैं। वास्तविकता यह है कि जब हम आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित होने लगते हैं तो सांसारिक भोगों की ओर से स्वत: दूर होने लगते हैं, यही परिस्थिति विरक्ति की उत्पत्ति का कारण है, यहीं से यह विचार प्रसूत होने लगता है कि ''ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या'' जिस धरा पर व्यक्ति जी रहा होता है, उसका एक कण भी उसका अपना नहीं वह इस तथ्य को जानने लगता है, इसी भाव को कवि कुछ इस प्रकार व्यक्त कर देता है –

मैंने स्वयं को जिया उस धरा के लिए
जिस धरा पर मेरा एक कण भी नहीं।
जिस खुशी के मैं युग बांटता हूँ फिरा
उस खुशी का मेरे पास क्षण भी नहीं

मन तो ऐसा चंचल है जो एक क्षण में ब्रह्माण्ड में विचरित होकर आ जाता है। इसे बांधना सहज नहीं, अर्जुन को भी तब ऐसा ही लगा होगा, जब उसने कहा था कि ''चंचल हि मन: कृष्ण'' परन्तु इसे बांधना का सुन्दर उपाय भी बता दिया गया था उसे कि-

''अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते।''

व्यक्ति का मन यदि नियंत्रित नहीं तो वह आत्मा के नितान्त विपरीत रहता है, इस भाव को कवि कितने सुंदर शब्दों में चित्रित कर देता है-

रे मन तुझे मनाऊं कैसे ?

'वाम खड़ा है कब का मुझ से,
मैं दाहिने तो तू बाएं।
मैं कहता 'चल रत्न उठाएं,
छान रहा है तू सिकताएं।' (पृष्ठ 4)

कवि कहीं-न-कहीं 'निराला' से भी अवश्य ही प्रभावित प्रतीत होता है। निराला अपनी एक कविता में कम परिस्थितियों के बावजूद भी जीवन के प्रति पूर्णतया आशावादी दिखते हैं जब वह कहता है कि-

अभी न होगा मेरा अन्त

वहीं कवि सुरजीत की पूर्ण आशावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए कहता है-

जीवन के नभ कुल इक सूरज
ऐसा भी है उगने वाला
स्वर्णिम लौ में भस्म बनेगा
जो अब है अंधियारा काला - कल मेरा है

इन पंक्तियों मे भी कवि का दृष्टिकोण आध्यात्मवादी ही है। कल उगने वाला सूर्य, आध्यात्म का ही सूर्य है जिसमें जीवन कलुषता का अन्त होने वाला है।

''मुझे खरीदो'' कविता की एक-एक पंक्ति कवि की मानसिकता और निजी प्रकृति का परिचय देती है। असहाय होते हुए भी वह निस्सहाय नहीं वह अपने स्वार्थों की शृंखलाओं में बन्धा हुआ नहीं, वह एकाकी भी नहीं तभी तो अपना परिचय वह इन शब्दों में देता है-

''पंख रहित हूँ सोच सहित हूँ''
सबके संग हूँ सब का हित हूँ..........
''.......................
मैं बच्चों की मुस्कानों में, बच्चा बनकर मुस्काता हूँ
रंग परागों का बन-बन कर खुली हवा में उड़ जाता हूं।।
कभी किसी के दुखित नयन में आंसू बनकर लहराता हूं।
कभी किसी अधरों पर मैं, ध्वज खुशियों के फहराता हूं।
कभी सलिल हूं, कभी सरित हूं।
पंख रहित हूँ, सोच सहित हूँ।''

इसी कविता की अन्तिम पंक्तियों में कवि की अद्वैतवादी प्रकृति भी स्पष्ट हो उठती है, जब वह कहता है-

सपर अपर का भेद अनोखा, देखो और ज़रा पहचानो
अपर सपर है, सपर अपर है, क्या सिद्धान्त यह तुम भी तो जानो।।
मेरी अपर उडानें देखो, आओ, मेरे पर नन जाओ,
मूल्यांकन कर सको मेरा तो, तुम भी सौदागर बन जाओ।''

इसमें संशय नहीं कि आदेशात्मकता और उपदेशात्मकता कविता को कुछ कमज़ोर अवश्य कर देती है।

"रे नाविक" कविता भी एक आध्यात्मिक कविता है जिसमें सुन्दर सुमन प्रतीकों को पिरोकर कविता रूपी सुन्दर माला गूंथी गई है जिसमें 'सागर' को आवागमन चक्र के रूप में दर्शाया गया है। 'भ्रमित-सी नाव' जीवन है, "लहरें जीवन के उतार-चढ़ाव हैं, "इक साथी" मन है जो चंचलता के कारण सदैव भटकता रहता है, तभी तो कवि ने उसे 'कपटी', 'द्रोही' और 'घाती' आदि की उपाधि दे डाली है जिसे अपने डूबने की तनिक भी चिन्ता नहीं। ऐसी परिस्थिति में 'नाविक' जो कि आध्यात्मिक गुरु का प्रतीक है वही बेड़ा पार लगा सकता है, परन्तु न जाने किन कारणों से वह भी असहाय स्थिति में नाव को तूफानों के बीच छोड़ कर चला गया है जिससे कवि की आत्मा हताश है।

यही नहीं कविताओं में अनेकों अभिनव बिम्ब मिलते हैं जिनसे कविता-कुसुम-क्यारी का प्रत्येक पादप संग्रह को सौन्दर्य प्रदान करता है और कवि मन की मृदुल, कोमल भावनाओं को व्यक्त करता है। एक-दो उदाहरण देखिये:

केश-सोन बिखरा कर
झुक नयन पे जाती हैं।
है उदास मेरे लिए-
फिर भी मुस्कुराती है। (कोई बढ़ई आएं)
रात अन्धेरी
रात धनी है।
भूखी, प्यासी
ज्यों काली चींटी सेना हो।
सूरज कब का चबा चुकी है
चांद चबाया
तारे खाए।

०००

आशा का दीपक
मद्धम सा
दीवट पर
जो सुलग रहा था
रात रेंगती दीवारों पर
दीवट तक भी जा पहुंची है
घेर चुकी है
चबा रही है (मेरी बारी)

सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग कविताओं को रोचक और आकर्षक बनाने में पूरा-पूरा योगदान देता है। यथा :

पश्चाताप, मृगतृष्णा,
सोच भटकी-भटकी सी,
ज़ंग खाई खिड़की ज्यों,
है पलक भी अटकी सी
बारिशों के मौसम की
काठ कोई फूली सी।

कविताओं में अन्तर्द्वंद्व स्पष्ट दिखता है जो यदा-कदा कवि को किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में ला खड़ा कर देता है। कहीं-कहीं दर्शन की स्पष्ट छाप मिलती है।

संशय नहीं कि बहुत-सी कविताओं में कवि की निराशा के भी स्पष्ट दर्शन होने लगते हैं और लगता है कि यह निराशा उसकी सामर्थ्य और क्षमता तथा नियंत्रण से बाहर है।

कवि समाज में रहता है अत: सामाजिक उथल-पुथल, उतार-चढ़ाव और परिस्थितियों तथा सामाजिक सरोकारों से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता है। विभिन्न प्रकार के शोषण के हथकंड़ों को वह भली-भान्ति समझता, देखता और परख कर उनको लेखनी के माध्यम से काग़ज़ों को सौंप देता है। समाज में संघर्ष केवल धनी और निर्धन वर्गों के बीच ही नहीं अन्य भी अनेकों उपवर्गों के बीच विद्यमान हैं। शोषण आर्थिक ही नहीं मानसिक तल पर भी होता है। उदाहरण के लिए आज नारी का जो शोषण हो रहा है, उसके लिए पुरुष उतना उत्तरदायी नहीं जितना स्वयं नारी वर्ग है। ऐसी ज्वलंत समस्याओं को उजागर करती कुछ कविताएं इस संग्रह में संकलित की गई हैं। ''नारी ही तो'' नामक कविता इसका सुन्दर उदाहरण है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ''अरण्य रोदन'' एक सुन्दर कविता संग्रह है जिसमें संकलित कविताओं का भाव-पक्ष ही नहीं कला-पक्ष भी सशक्त है। जम्मू-कश्मीर के हिन्दी लेखकों में सुरजीत निकट भविष्य में अपना एक शीर्ष मुकाम बना लेगा ऐसा मेरा दृढ़-विश्वास है।

ooo

पाराशर आश्रम, ठंडा पददर, जिला औदयोगिक केन्द्र, धार रोड़ ऊधमपुर-182101

April-May : 2009

हिन्दी

शीराज़ा
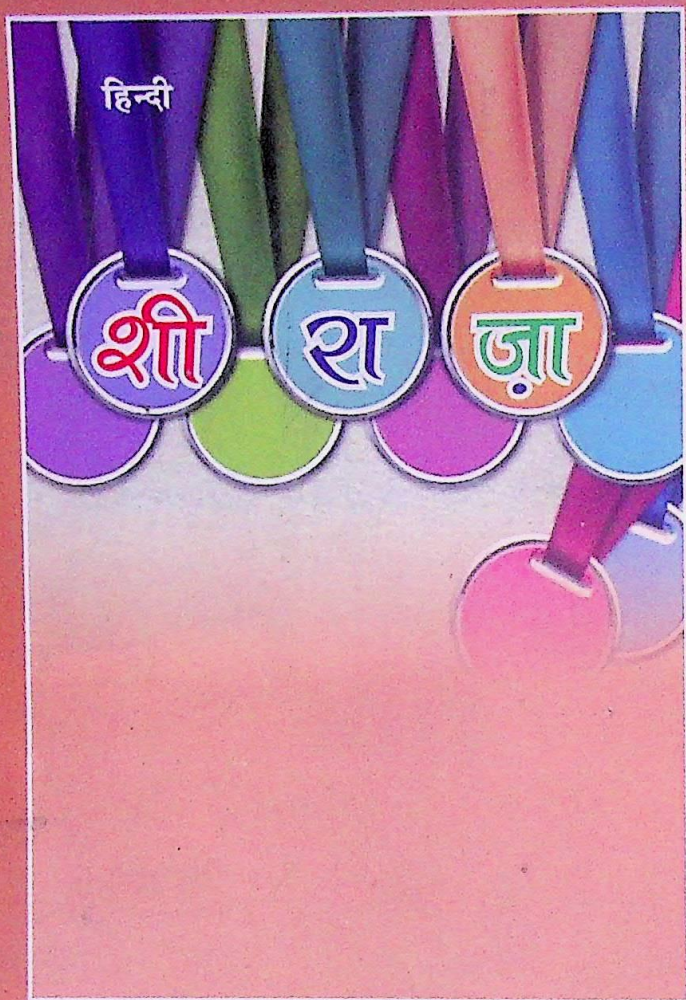
Published by the Secretary on behalf of
J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu
and Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, Jalandhar City (Pb.)